नुष्य बनो

1,12/83 14/8?

वा
१०

शरणागति,

शुभ संकल्प,

I,

प्रेम,

म कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक
कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, स
सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है
बनना और बनाना ।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और
रण भाषा में प्रचार करना ।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी
दिया जायगा ।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्प
होगा । लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय ।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ सा
लिखना चाहिये । उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये
पीं० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी । इसका वार्षिक मूल्य १०-

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले
डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अं
निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दू
बिना मूल्य भेजी जा सकेगी ।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि
के नाम से भेजने चाहिये । मनीआर्डर कूपन पर अपना पता
लिखना चाहिये । और पते की तबदीली भी ।

प्रका

R. S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	मार्गशीर्ष संवत २०४० वि०	अङ्क २,३

शब्द

आज घड़ी मंगल सुखदायक i सतगुरु पूरे भये हैं सहायक ।।
घट में सूर हुआ उजियारा । दूर मिटा सब तिमिर बिकारा ।।
सुख आनन्द की शोभा भारी । देखत देखत लागी तारी ।।
अनहद राग की धुन सुन पाई । हर्ष हर्ष मूरत मुसकाई ।।
कँवल खिले भँरा मंडलाया । वास सुबास पाय ललचाया ।।
अद्भुत लीला बरन न जाई । मन बानी रहे दोउ अलसाई ।।
त्रय चिंतन का मर्म पिछाना । पिया अमी रस हुआ मस्ताना ।।
झाँकी निरखी अगम अनूप । रुपवान से हुआ अरुप ।।
रेखा रूप रंग सब त्यागा । सहजहिं हंस बना है कागा ।।
मान सरोबर किया असनान । सुन्न गुरू का लागा ध्यान ।।
दुर्गम घाटी शिला अपार । गुरु बल पाय किये सब पार ।।
बीन बाँसरी उत्तम बाजा । सुन सुन धुन सोया मन जागा ।।
राधास्वामी चरन पाय बिसराम । मेटा देवासुर संग्राम ।।

आत्मिक प्रायमर से

(लेखक महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज)

सवाल--जवाब

१- यदि कोई मनुष्य किसी से पूछे कि तुमको सबसे अधिक प्रबल इच्छा किस वस्तु की है तो क्या तुम समझते हो कि इसका जबाब क्या होगा ? कोई कहेगा कि हम धन चाहते हैं, कोई कहेगा कि हम विद्या, बुद्धि चाहते हैं। किसी को स्वास्थ्य की इच्छा होगी और कोई कोई आदमी यह भी कहेगा कि हमको सबसे अधिक इच्छा ईश्वर की है।

२- अपनी समझ में यह सब-के- सब सच्चे हैं। लेकिन हमारी समझ में यह सब-के-सब ,झूँठेहैं। झूँठे इस वजह से नहीं हैं कि वे झूँठ बोल रहे हैं, । नहीं,नहीं झूँठ बोलने की दृष्टि से हम उन्हें झूँठा नहीं कहते बल्कि इस वजह से उन्हें झूँठा कह रहे हैं कि उन्होंने सच्चाई को नहीं समझा। सच्चा उत्तर नहीं दिया। कहना था कुछ और, और, कह गये कुछ और। उनका कहना बिना सोचे-समझ था। इसलिये वह झूँठ था और वह झूँठ कह गये।

३- अब इनसे दुबारा उन्ही के उत्तर का उलट-फेर करके उनसे सवाल करो।

भाई ! तुम धन किस लिये चाहते हो ?

विद्या और बुद्धि की चाह क्यों है ?

स्वास्थ्य की इच्छा क्यों है ?

अगर ईश्वर ही का चाहना है तो क्यों है ? अब इसका उत्तर क्या होगा ? बहुत से लोग इस सवाल ही को सुनकर घबरा जायगे और बहुतों से शायद उत्तर ही न बन आयेग।

लेकिन सवाल का जवाब है और वह जबाब बड़ा सरल है वह केवल एक शब्द में दिया जा सकता है और वह एक शब्द 'खुशी' आनन्द) है।

हम धन चाहते हैं खुशी (आनन्द) के लिये ।
हम विद्या और बुद्धि चाहते हैं खुशी के लिये ।
हम स्वास्थ्य चाहते हैं खुशी के लिये ।
और हमको ईश्वर की तलाश और जाँच - पड़ताल है खुशी के लिये ।

४- ध्यान देने से प्रतीत होता है कि खुशी ही सबसे बढ़कर वस्तु है स्वास्थ्य हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं है । धन हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं । विद्या और बुद्धि हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं । माना कि यदि ईश्वर भी मिला और खुशी नहीं मिली तो कुछ भी नहीं मिला ।

५—खुशी सबसे मुख्य है । इससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है ।
हम खाते-पीते हैं खुशी के लिये,
हम खेलते-कूदते हैं खुशी के लिये ।
हम पढ़ते-लिखते हैं खुशी के लिये,
हम सोचते-समझते हैं खुशी के लिये ।
हम धन इकट्ठा करते हैं खुशी के लिये ।
रुपया-पैसा कमाते हैं खुशी के लिये ।
फिर हम ईश्वर की भक्ति किसके लिये करते हैं ?
केवल खुशी के लिये ।
यदि खुशी का सवाल न होता तो कैसा खेल कूद ! कैसा खाना पीना ! कैसा लिखना पढ़ना ! कैसा धन-मान ! और कैसी ईश्वर की भक्ति और पूजा ।

६—यह सब-के सब अर्थात परिश्रम, सुख-चैन, विद्या, बुद्धि, भक्ति भाव, शादी विवाह केवल एक खुशी के भाव के आधीन हैं ।

विशेष ध्यान देने से यह पता लगता है कि यह सब-के-सब अपने तौर पर प्राप्त की जाने वाली वस्तु में नहीं हैं । प्राप्त करने की वस्तु तो खुशी है । और यह सब खुशी प्राप्त करने के उपाय और साधन है

यदि खुशी (आनन्द) प्राप्त करने की वस्तु न होती तो इन साधनों की ओर ध्यान भी न जाता । साधन और साध्य (प्राप्त करने की वस्तु) में अन्तर होता है । साधन स्वयं वह वस्तु नहीं है बल्कि उस वस्तु के प्राप्त करने का हथियार है । हथियार से केवल उस समय तक सम्बन्ध रक्खा जाता है जब तक प्राप्त की जाने वाली वस्तु की प्राप्ति में सफलता नहीं होती । वह वस्तु प्राप्त हुई कि साधन समाप्त हो गये ।

७—मान लो कि तुम यह पूछो कि खुशी की इच्छा किस लिये की जाती है तो तुम्हारा यह सवाल बेजा गलत और अनसमझी का सवाल होगा । फिर भी हम तुम्हें उत्तर देंगे कि खुशी की इच्छा केवल खुशी के लिये है खुशी से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है ।

आनन्द (खुशी) ही मन की इच्छित वस्तु है और आनन्द से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है । आनन्द ही सत्य वस्तु है और आनन्द की हर समय मनुष्य के मन में याद रहती है । आनन्द जब प्राप्त हो जाता है तो सब कुछ मिल गया माना जाता है ।

क्षमा याचना

प्रेस कर्मचारियों की कमी के कारण हम माह नवम्बर का अंक नहीं छाप सके अब दो माह का अंक नवम्बर व दिसम्बर का एक साथ आपकी सेवा में है आशा है कष्ट के लिये पाठक गण क्षमा करेगें ।

प्रकाशक–

निवेदन

बार बार लिखने पर भी हमारे ग्राहक भाई हमें अपना वार्षिक मूल्य दो कि २—२ साल से ऊपर हो गया है नहीं भेज रहे हैं । हम अपने सभी सत संगी भाईयों से निवेदन करते हैं कि वे अपना वार्षिक मूल्य भेजकर हमें पत्रिका संचालन में सहयोग दें ।

सम्पादक

(परमसंत परमदयाल फकीर चन्द जी महाराज का
देवी चरन के नाम एक पत्र में)

आदेश

कुछ न करो ! पूर्ण शरणागत बनो। जैसे कोई दीन दुखी किसी महापुरुष के पास गिड़गिड़ाता है, रोता है और कहता है कि तुम्हारी शरण में हूँ तो वह अपनी सुधि भूल जाता है, उसका अपनापन जाता रहता है और वह पुरुष उसकी सहायता करता है। इसी प्रकार मालिक का पूर्ण रूप से शरणागत होने पर सत पद प्राप्त हो जाता है।

मैं अपने को अब उसी शक्ति के सुपुर्द करता रहता हूँ। बच्चे को जब दुख होता है या भय लगता है या भूख होती है तो वह माँ से लिपटता है उसका सहारा लेता है। वह यही समझता है कि माँ उसका सब दुख दूर कर देगी। इसी प्रकार सब चिन्ता फिक्र छोड़ कर तुम भी परमात्मा, आधार या मालिक का सहारा पकड़ो।

ईश्वर परायण होना (रजा व तसलीम का तरीका)

(महर्षि शिव व्रतलाल जी महाराज की उर्दू पुस्तक से)

संसार में जितने धर्म हैं उनकी शिक्षा यह है कि मनुष्य ईश्वर परायण होने के सिद्धांत को ग्रहण करे। अपने आप को मालिक के अर्पण कर देना चाहिए। जो लोग अपना स्वभाव ऐसा बना लेते हैं वह ईश्वर पर यण

कहलाते हैं। भक्ति मार्ग का इष्ट पद यही है। जब मनुष्य इस पर दृढ़ता से स्थिर हो जाता है फिर उसको जिस प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है उसका वर्णन कठिन है। उसका जीवन न केवल मधुर और आनन्द दायक हो जाता है किन्तु संसार के समस्त सम्बन्धों और घटनाओं के साथ उसको इस प्रकार की एकता और अनुकूलता हो जाती है कि फिर उसको कहीं भी दुख का भय नहीं रहता।

किन्तु इस सिद्धान्त का समझ में आना कठिन है। लोग कहते हैं कि मनुष्य अपने कर्मों का आप उत्तर दाता है। जैसा इसने किया है वैसा भोगेगा। इससे ईश्वर का क्या सम्बन्ध है। मैं भी इस सिद्धान्त की सचाई का विरोधी नहीं हूँ। जो व्यक्ति अपने अहंकार से काम करेगा, उसको दुख सुख अवश्य मिलेगा, किन्तु अहंकार कोई अच्छी बात नहीं है और न यह असली वस्तु है। यह तो केवल मन की कल्पित दशा है और भ्रम के कारण उत्पन्न हुई है। जब तक यह भ्रम है तब ही तक आवागवन. जन्म-मरण, पाप-पुण्य तथा नर्क और स्वर्ग हैं। उसी समय तक कर्म गले की फाँसी बनकर मनुष्य को सताता रहता है। यदि किसी प्रकार इस अहंकार या अपने ऊपर विजय पाकर प्राकृतिक ढंग से जीवन व्यतीत करने लगे तो फिर वह कर्म करता हुआ भी अकर्मक कहलायेगा और उसको न दुख होगा न सुख मिलेगा।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि ऐ अर्जुन ! तू कर्म को मेरे अर्पण कर दे। इसमें मेरा तेरा पना सम्मिलित न कर और तू कभी दुखी न होगा। यह सारा दुख मेरे तेरे पने से पैदा होता है और मेरा तेरा पना ही अहंकार है।

प्रकृति के व्यवहार में कभी भी यह दशा नहीं है। कर्म सब करते हैं कर्म करना अनिवार्य है। कर्म ही से यह सृष्टि बनती है। कर्म के बिना एक क्षण भी कोई नहीं रह सकता। चाहे वह जाग्रत अवस्था हो, चाहे स्वप्न या सुषुप्ति की अवस्था हो, यहाँ तक कि समाधि को लोग अचेतनता की अवस्था कहते हैं। इसमें भी कर्म है मगर इस कर्म से और मनुष्य के अहंकार से किये

हुए कर्म में अन्तर रहता है। एक की जड़ प्रकृति के विश्वव्यापी सिद्धान्त पर है, दूसरी मनुष्य के कर्त्तव्य और मन की कल्पना पर निर्भर है। पहिली दशा ठीक है सत्य है, दूसरी गलत है असत्य है। पहिली दशा के क्रम में दुखी नहीं होता। दूसरी के क्रम में दुख होता है।

उदाहरण रूप यों समझो। एक इन्जन चलता है। इसमें हजारों पुर्जे गति करते हैं। सब किसी विशेष प्रयोजन के लिए काम करते हैं। जब तक सब पुर्जे मिल कर काम कर रहे हैं सुन्दरता और शक्ति दिखाई पड़ती है मगर जहाँ कोई पुर्जा अड़ गया, उसी समय उस पर इन्जीनियर का हथौड़ा बरसने लगता है। जब तक वह ठीक काम नहीं करता तब तक उसको पीट पाट करने का काम जारी रहता है। इसी अड़ने को अहंकार कहते है। इसी अहंकार का दूसरा नाम मोह, माया, भ्रम और अज्ञान है। जहाँ एक बार मनुष्य में यह घृणित दशा आई फिर काल भगवान हथौड़ा लेकर उसको ठीक करने लगते हैं। जैसे पुर्जे को इन्जन से निकाल कर गलाया जाता है, गढ़ा जाता है और गढ़ कर फिर इसमें जोड़ा जाता है इसी तरह मनुष्य के अहंकार के दोष को दूर करने के लिए उसको आवागमन की भट्टी में तपाते हैं और उसको ठोक करके फिर प्रकृति के इन्जन में जोड़ देते हैं और उसको दुख सुख दोनों से छुटकारा हो जाता है और वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

यह सृष्टि वास्तव में एक इन्जिन है और कुल जीव चाहे किसी हैसियत के हों उसके पुर्जे हैं। जो मनुष्य गलती से इन्जिन के अस्तित्व और इन्जिन के उद्देश्य और इन्जिन के प्रयोजन को भूल कर मेरा तेरा पना करने लगता है, अपने निजी व्यक्तित्व और निजी स्वार्थ के भ्रम में पड़कर बिगड़ जाता है उसी के लिए आवागमन, जन्म-मरण और पाप-पुण्य हैं, दूसरों के लिए नहीं। जो व्यक्ति इस बात को समझ लेता है कि हम ब्रह्माण्ड के पुर्जे हैं हमारी अपनी गरज नहीं है किन्तु सृष्टि की गरज के साधक और औजार हैं उसमें भूलकर भी मेरा तेरा पना नहीं आता। उसके लिए न कहीं दुख सुख है, न पाप पुण्य है। वह समस्त पूर्जों के साथ मेल मिलाप रखता हुआ सृष्टि के उद्देश्य को

पूरा करता है।

ब्रह्माण्ड में सिवाय मनुष्य के कहीं भी यह अहंभाव नहीं है। अपने चारों ओर पशुओं को न देखो, पक्षी अंडे बच्चे देते हैं। जब तक वह स्वयं अपना भोजन आप पैदा करने के योग्य नहीं होते जब तक माँ बाप प्रेम पूर्वक उनको योग्य बनाने की व्यवस्था किया करते हैं। जहाँ वह योग्य हो गये फिर वच्चे को माँ बाप से पहिचान करना कठिन है किन्तु मनुष्य की दशा इससे बिल्कुल उल्टी है। वह अपने और अपने पुत्र की गर्दन में झूँठी प्रीति की रस्सी डालकर दुखी होते हैं और उसे भी दुखी करते हैं। अहंकार अपने ऐश आराम और अपने यश का इतना लालायत हो जाता है कि रात दिन उसी की उधेड़ बुन में फँसा रहता है और बुरे भले कर्म करता हुआ कभी दुखी और कभी सुखी होता है। इस दशा से वह शीघ्र छुटकारा नही पाता। इसको अपनी करनी का दुख सुख भोगना पड़ता है और सृष्टि के उद्देश्य से दूर पड़कर वह कष्ट उठाया करता है।

यदि वह एक बार सृष्टि के उद्देश्य को समझ ले तो फिर इसको हमेशा के लिए दुखों से छुटकारा मिल जाये, क्योंकि इसका अहंपना असली नहीं है, कल्पित है। यह कल्पित भूत इसकी उसी प्रकार चिपट जाता है जैसे वृक्ष के ठूंट में गलत ख्याल बना लेने से कभी कभी अज्ञानियों को तरह तरह के दुख होते हैं। सारा दुख केवल अहंभाव के कर्म के कारण हैं अन्यथा प्रकृति में न कहीं दुख है न सुख है।

स्त्री, पुत्र तथा सम्बन्धी यह सब क्या अपने हैं? तुमने कैसे जाना कि यह अपने हैं। यदि तुम्हारे होते तो सर्वदा तुम्हारे साथ रहते, कभी अलग न होते मगर तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो कि वह उसी तरह आकर तुमसे मिल जाते हैं जैसे राह चलने वाले यात्री के साथ यात्री मिलते हैं। यह नहीं कहा जाता कि उनके साथ प्रीति न करो मगर वह प्रीति उतनी हो जितनी प्रकृति आज्ञा देती है और जितनी आवश्यकता है उनको अपने गले का हार न बनाओ। फिर तुमको तनिक भी दुख न होगा किन्तु स्वतन्त्रता के वातावरण में रहते हुए

इनके दृश्यों को देखोगे और एक क्षण को भी सृष्टि के उद्देश्य से पृथकता न होगी। वियोग ही शोक और पाप है, मिलाप में दुख नहीं है। अहंकार ही को वियोग समझो। अहंकार के दूर होने को मिलाप समझो।

अहंकार उत्पन्न हो गया। वह कैसे पैदा हुआ। इस पर वाद विवाद नहीं है मगर वह सृष्टि में मानव वर्ग में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। कोई कहता है—'हाय! मेरा पुत्र मर गया। कोई चिल्लाता है—'हाय! मेरा धन माल लुट गया।' कोई कहता है—'हाय! मेरा राज पाट छूट गया।' तात्पर्य यह है कि चारों ओर मेरे तेरे पने' की आवाज जोर पर है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में मेरे तेरे पने का दुख जोर शोर से व्याप्त हो रहा है तो उसके दूर करने का उपाय सोचना भी आवश्यक है।

इस रोग का उपाय यह है कि मनुष्य सत्संग करे। सद शास्त्रों का अध्ययन करे। सच्चे गुरु के साथ सम्बन्ध जोड़े। सत्संग, सद्शास्त्र और सत्-गुरु के प्रेम के क्रम में अपने को ईश्वर परायण बनाये और हमेशा यही कहता रहे—

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।

जिस तरह एक घृणित विचार के उत्पन्न होने से अहं पना आया है उसी प्रकार ईश्वर परायण होने के ख्याल से वह दूर हो जायेगा। इसके बाद जो अवस्था आयेगी वह आत्मावस्था होगी।

तमाम दिलोजान से ईश्वर के प्रेम का दम भरो। यहाँ तक कि अपने आप को भूलते जाओ। जब ईश्वर का ख्याल हृदय पर अच्छी तरह जम जायगा, फिर उसके अतिरिक्त और कोई ख्याल न रहेगा। यही तुम्हारा अपना स्वरूप होगा। जब तक मैं है तब तक ईश्वर नहीं है। जब ईश्वर होगा फिर मैं का कहीं पता तक न रहेगा।

जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं मैं नांहि।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समांहि॥

यह प्रेम और भक्ति का मार्ग है। भक्ति के मार्ग में दूसरे का अस्तित्व

नहीं माना जाना। यही अद्वैतवाद है। इसी को ज्ञान और वेदान्त कहते हैं।

प्रेम से अधिक कोई वस्तु शीघ्रता से मनुष्य की दशा में परिवर्तन नहीं ला सकती और न प्रेमी के अतिरिक्त कोई सच्ची निछावर करता है। वर्ना तुम नहीं देखते कि माता अपने बच्चे के लिए क्या क्या कष्ट नहीं उठाती। क्या तुमको नहीं मालूम कि सती अपने पति के प्रेम में भस्म हो जाती थी। क्या तुम अब भी नहीं देखते कि जब किसी आदमी को किसी स्त्री से दुनियावी प्रेम हो जाता है तो वह उस पर जान माल निछावर कर देता है और इसी के हाथ से मारे जाने में खुशी मानता है। तुमको भी ईश्वर के चरणों में ऐसा ही प्रेम भाव पैदा करना चाहिए। जहाँ यह प्रेम पैदा हुआ, फिर आप ही आप सुगमता से अहंकार के जाल से बच कर मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।

जिस समय मनुष्य ने समझ लिया कि सारी हालत ईश्वर की उत्पन्न की हुई है और वह अपनी मौज और मसलहत से नई नई स्थितियाँ उत्पन्न करता है तो भक्त प्रसन्नता से उनके स्वागत करने के लिए तत्पर रहेगा। विष हो या अमृत, जब यह मित्र के हाथ से मिलेंगे मीठे और स्वादिष्ट होंगे। दुख या सुख, जो कुछ ईश्वर देता है सब में भलाई दृष्टिगोचर होगी। भक्त का अपना जीवन नहीं रहता। वह सदा सदा के लिए मृत्यु और जीवन की समस्या को हल कर लेता है। इसका जीवन मालिक का है। वह इसके चरणों में अर्पण है। जैसा चाहे वह उसका उपयोग करे। वह रहे मैं न रहूँ, यह भक्ति का नियम है। यदि इस पर तनिक भी सोच विचार करो तो तुमको ज्ञात हो जायेगा कि इसमें सचाई है। कोई बनावट नहीं है।

शिवजी महाराज जो भक्तों में सबसे उच्च हैं महारानी पारवती जी से एक अवसर पर इस प्रकार कहते हैं—

चाहे कीन करावे सोई। यह गति उमा जान कोई कोई ॥

जो इसे समझ लेता है और ईश्वर परायण बन जाता है फिर उसको अहंकार का तनिक भी भय नहीं रहता।

यहाँ तक तो मैंने भक्ति भाव की दृष्टि से कहा। अब मैं तुमको

दिखलाना चाहता हूँ कि जो अप्रिय परिस्थितियाँ दुनियाँ में उत्पन्न होती हैं उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जो अपने साथ विशेष प्रकार की बरकत न रखती हो। यदि इनको भक्त की दृष्टि से देखते हो तो क्या कहना है! तुम सुगमता से ईश्वर परायण होने के मार्ग को स्वीकार कर सकते हो। यदि अभी तक यह दृष्टि नहीं मिली, तब भी कोई हानि नहीं। विद्यार्थी और जिज्ञासु की ध्यान दृष्टि से इसको देखो। इस प्रकार देखने से भी तुमको वास्तविकता का पता लगेगा क्योंकि यह हालत कुदरती रूप से तुम्हारे सुधारने के लिए उत्पन्न की गई है।

दुनियाँ में बुरी से बुरी हालत अपना उज्ज्वल पहलू रखती हैं। तुम बीमार हो। क्यों? कारण यह है कि तुमने प्रकृति के नियम को तोड़ा। तुम में विचार से चाहे और किसी तरह से दूषित मल उत्पन्न हो गया। बीमारी इस दूषित पदार्थ को दूर करना चाहती है ताकि वह दशा चली जाय और तुम स्वस्थ हो सको। मृत्यु क्यों आती है? क्योंकि शरीर अब जीवन का जामा (पहिराबा) बनने के योग्य नहीं रहा। यह शरीर नष्ट हो जायगा। जीवन फिर नवीन रूप से नया वस्त्र धारण करेगा। जहाँ कहीं बुराइयाँ पैदा होती हैं प्रकृति की शक्तियाँ स्वयं इनको दूर करने के लिए आकर्षित हो जाती हैं। मुर्दे की लाश जमीन पर पड़ी हुई है। गिद्ध, चील ईश्वर जाने कहां से आ जाते हैं। भूमि के कीड़े तक उस ओर आ जाते हैं। सूर्य की किरणें इस पर काम करने लगती हैं और देखते देखते वह दृष्टि से लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब कभी तुम्हारे देह, मन और बुद्धि में किसी प्रकार का विकार पैदा होता है प्रकृति इसके इलाज का आप प्रबन्ध कर लिया है। तुमने व्यर्थ अपने आप में अहंकार उत्पन्न कर लिया है। यह हशा आनन्द दायक नहीं। इसलिये इसको दूर करने के लिए आवश्यक है कि तुमको आवागमन सम्बन्धी कुण्ड में डुबकी दी जाय ताकि तुम शुद्ध पवित्र होकर फिर असली अवस्था में आ जाओ। चूंकि भक्त इन सब बातों को ईश्वर भक्त समझता है प्रसन्नता से उनका स्वागत करता है। इसी को रजा व तसलीम का तरीक या ईश्वर

परायणता कहते हैं।

यदि हम इस बात को भली प्रकार समझ लेते कि दुनिया के दृश्यों में कौन सिद्धान्त काम करता हैं और क्यों, किस लिये और किस प्रकार घटनायें बदलती रहती है तो हमारी शिकायतें सर्वथा दूर हो जाती और हम तूफान और समुद्र की भयावनी लहरों में बन्दर की कुशलता का खेल देखते मगर सिद्धान्त का भेद समझ में नहीं आता। इस कारण परेशानियाँ हैं। साधु और महात्मा इस सिद्धान्त के रहस्य को जानते हैं। वह प्रत्येक कष्ट में मालिक की छिपी हुई अपार दया को देखते है अतः उनको दुख नहीं होता। दुख का पहाड़ चाहे सिर पर आ गिरे मगर वह आह तक नहीं भरते।

तुम भी इस नियम को समझने का प्रयत्न करो। यदि प्रारम्भिक दशा में इसकी समझ नही आती तो छोटे बच्चे की तरह विश्वास रक्खो कि ईश्वर जो कुछ करता हैं अच्छा ही करता है। सच्चे हृदय से कहो—'तेरी इच्छा पूर्ण हो।' 'तेरी मौज अपना काम करे।' समय आयेगा जब तुमको धीरे धीरे ईश्वर परायण होने के क्रम में असलियत का रहस्य ज्ञात हो जायेगा और तब तुम प्रसन्न रहोगे।

दुनिया प्रेम स्थल हैं। सारा ब्रह्माण्ड प्रेम से भरपूर हैं। प्रेम की गोद हर समय खुली है। मालिक प्रेम स्वरूप है जो कुछ हो रहा हैं प्रेम वश ही हो रहा है। प्रेम ने सबको अपने आधीन बना रक्खा हैं सुख दुख के समस्त दृश्य वास्तव में प्रेम के दृश्य हैं। अकाल, ताऊन, बवा भूचाल, बाढ, तूफान सब में प्रेम का चमत्कार है। सब सोच समझ कर किये जा रहे हैं। इस से घबराओ नहीं। इनके क्रम में मालिक की मौज काम कर रही है। बच्चे को फोड़ा हो गया है माँ उसको गोद में लेकर डाक्टर से कहती है कि इसको चीरा लगा दो लड़का रो रहा है मगर माँ परवाह नहीं करती। ज़बरदस्ती चीरा लगवाती हैं। पीव बाहर निकल जाता है और बच्चा अच्छा हो जाता है अज्ञानी बालक माँ को बुरा भला कहता है निर्दयी बताता है मगर माँ मुस्कराती रहती है। इसी तरह तुम भी ईश्वर के बाल बच्चे हो। प्रेम मार्ग से हटते जा रहे थे।

वह इन सांसारिक कष्टों के क्रम में तुम्हारा उद्धार करना चाहता है। तुमको चाहिये कि धीरज रक्खो। उस पर पूर्ण विश्वास रक्खो। दुख और कष्ट के क्रम में तुम्हारी भलाई मंजूर है। तुम्हारी आत्मिक उन्नति हो रही है। तुम सच्चे और भोलेभाले बच्चे बने रहो और उस प्रेम रूपी माता की गोद में मचलते हुये उसके काम काज में आपत्ति न उठाओ। माता तुमसे अधिक समझ रखती है। वह जानती है कि किस बात में तुम्हारी भलाई है तुम नहीं जानते। तुम में अज्ञान है और यह अज्ञान कोई अन्य वस्तु नहीं है केवल प्रेम की कमी का नाम अज्ञान है। तुम में व्यर्थ अहंकार और स्वार्थपरता आ गई है। तुमने सृष्टि के उद्देश्य को नहीं समझा। सत मार्ग से दूर चले गये। नियम का पालन करो और नियम को अपना कार्य करने दो। कुछ इसी में तुम्हारी भलाई है और इसी का नाम ईश्वर परायण होना है। यही रजा और तसलीम का तरीक है।

एक बात तो यह हुई। दूसरी बात यह है कि प्रतिक्षण दुख के क्रम में सुख प्राप्त होता रहता है। तुम मालिक की निर्दयता की शिकायत करो, मैं नहीं करता। मैं खुली आँखों देख रहा हूं कि नुकीले काँटो के साथ मिठास है। दुख के साथ सुख है फोडे का पीव जब निकलेगा आराम मिलेगा। जहाँ चीरा लगता है उसके साथ मरहम पट्टी भी होती रहती है। कठोरता और कोमलता दोनों साथ साथ काम करते है। तुम थोंडा सा ध्यान देने से उसकी उसकी असलियत को देख सकते हो।

कोई कष्ट ऐसा नहीं हैं जो आत्म ज्ञान(रुहानियत)का सहायक न हो। जो गिरते हैं उठाये जाते हैं। जो रोगी हैं उनको कडवी दवा दी जाती है जो मरते हैं वह जीवित किये जा रहे हैं। जहाँ परिवर्तन होगा, वहाँ कुछ न कुछ दर्द का होना आवश्यक है। बच्चा जब बढ़ने लगता है पतला दुबला हो जाता है। यदि तुम भी अध्यात्म के जिज्ञासु हो, आत्म उन्नति की इच्छा रखते हो तो दुबलेपन की दशा को देखकर क्रोधित और अप्रसन्न न हो। यह तो प्रकृति का स्वभाव है। प्रकृति इसी प्रकार काम करती है

इसमें कोई बात अनुचित नहीं है । चूँकि तुमने अपने पन को गले का हार बना रक्खा है, दुख के कल्पित भूत को अपने ऊपर सवार कर रक्खा है, इस लिये दुखी होते हो ।

वर्षा होती है । उसकी चिन्ता क्या है । अभी थोड़ी देर मे सूर्य निकलेगा और उसकी गर्मी में वर्षा की सर्दी को भूल जाओगे । बीमारी यदि आती है तो आने दो । दुखी न हो । इसी दशा के क्रम में तुम स्वास्थ्य का हर्षदायक दृश्य देखोगे और उसकी कदर करोगे ।

मैं तुमको गलत शिक्षा नहीं देता । यह शिक्षा कथन मात्र नहीं है किन्तु अमली है व्यवहार में आई हुई है । मेरी फिलोसफ़ी तर्क, वितर्क की वस्तु नहीं है, न शब्दों का ग़ोरखधन्धा है । जो बात है स्पस्ट है । जो कहता हूँ इस पर मेरा अमल है यदि मेरी बात तुमको प्रभावित नहीं करती तो या तो तुम्हारा दोष है या मेरे क्रियात्मक (अमली) जीवन में त्रुटि होगी क्योंकि मेरा क्रियात्मक जीवन इतना पूर्ण नहीं है किन्तु तुम स्वयं इतना निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हो कि इन बातों में कोई बात झूठ नहीं कही जा रही है । मालिक जो करता है अच्छा ही करता है । इसलिये हमको उसकी बुद्धिमता पर विश्वास रखना चाहिये ।

कहावत है कि एक बार नारद भगवान के भजन में लवलीन थे । उनके चित्त में गलत भ्रम उत्पन्न हुआ : भ्रम यह था कि दुनिया में अच्छे लोग दुखी हैं और बुरे लोग सुखी हैं । ऐसा क्यों है? इनकी समझ में नही आया । देर तक बिचार करते रहे मगर शंका दूर नहीं हुई । शास्त्रों के उत्तर सन्तोषप्रद सिद्ध नहीं हुये । अन्त में वह उठ खडे हुये और सोचा कि प्रजापति के पास जा कर इस गुत्थी को सुलझाना चाहिये । यह सोचकर चल पड़े । अभी दो चार पग आगे बड़े होंगे कि एक गंवार आदमी साथ हो लिया । नारद ने पूछा — तू कहाँ जा रहा ?' इसने कहा कि प्रजापति के यहा जा रहा हूँ । नारद बोले अच्छा चल मैं भी उनके ही पास जा रहा हूँ । अच्छा है तेरे कारण अकेले पन की विकलता दूर हो जायेगी और रास्ता सरलता से कट जायेगा । राह में एक धनाढ्य का घर मिला जो अतिथि सत्कार के लिये प्रसिद्ध था ।

सायम काल हो गया था। दोनों उसी के घर ठहरे। उसने नारद को ईश्वर का सच्चा भक्त समझ कर आवभगत की। सोने चादी के बर्तनों में भोजन परोसा। वे रात भर वहाँ रहे। जब थोड़ी रात्रि रह गई, गंवार आदमी चुपके से उठा और चादी सोने के कई बर्तन चुरा लिथे और अपने कपड़ों में छुपा रक्खे।

नारद इसकी करतूत देख रहे थे। मन में डरे और झट पट विना कहे सुने वहाँ से चल पड़े। वह दिन भी यात्रा में बीत गया। शाम को बड़ीआँधी आई। मूसल धार वर्षा होने लगी, जंगल में कहीं ठहरने को स्थान नहीं था। सर्दी के कारण दोनों काँपने लगे। अन्त में एक झोंपडा दिखाई दिया, उसमें एक बड़ा कंजूस आदमी रहता था। नारद के आवाज देने पर उसने किबाड़ खोले और क्रोध में आकर कहने लगा कि यहां जगह नहीं है। कहीं और जगह चले जाओ। नारद ने वहुंत कुछ खुशामद की, तब जाकर उसने ठहरने दिया। भूक और प्यास प्रबल थी, नारद ने कहा— भाई! भूक से जान निकल रही है कुछ खाने को दो। उसने कहा कि मेरे घर में कुछ नहीं है। मैंने अपने कानों तक भी नहीं सुना है मगर जब उस गँवार नेसमझाया और अतिथि सेवा का फल वताया जो कंजूस ने कुछ सड़ा गला भोजन दिया। भूख में किसी को तमींज नहीं रहती। दोनों ने उसको खा लिया और रात को पड़ कर सो रहे जब प्रातः काल हुआ कंजूस ने कहा - चलो अपना रास्ता देखो।' वेचारे उठे और अपनी राह लगे। चलते समय गंवार आदमी ने चोरी के कुल वर्तन उसको दे दिये। नारद के हृदय में क्रोध आया किन्तु फिर भी कुछ नहीं कहा। तीसरा दिन भी रास्ता चलते ही कटा। जब साम का समय आया किसी प्रसिद्ध साधु प्रकृति के मनुष्य के यहां ठहरे। उसने उन्हें आदर सत्कार के साथ भोजन कराया। रात को कथा वार्ता होती रही किन्तु घरवाला अपने छोटे वच्चे को गोद में लिथे हुये प्यार करता रहा और उनकी बातो को कम सुना। जब सब सो गये उस गंवार ने उठ कर दीपक के उजाले में बच्चे का गला घोट दिया और वहीं ठंडा ही गया। अब तो नारद के होश जाते रहे। किसी तरह उठे और रातों रात भाग निकले। जब कई कोस चले आये सूर्य निकल आया।

नारद ने क्रोध भरी दृष्टि से उसको देखा और कहने, लगे – जालिम राक्षस ! तू मेरे साथ न चल । तू दुष्ट और निर्दयी है । मैंने तेरे करतब देख लिये । मेरा तेरा साथ नहीं हो सकता । उस गंवार ने मुस्कराकर उत्तर दिया कि मैं तो हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा । एक क्षण को भी साथ न छोडुगा । इतनी सरलता से तुमको अपने से अलग न होने दूँगा । नारद के क्रोध का पारा समता की सीमा से ऊपर चढ गया । उन्होंने इसके मारने के लिये अपना डंडा उठा लिया । मगर उसी समय वह गंवार आदमी बड़े तेज के साथ चमकने लगा और उसके रुप में विष्णु भगवान की मूर्ति दिखाई दी । शंख, चक्र, गदा, पद्म,लिये हुयेविष्णु भगवान पास खडे थे । नारद बडे लज्जित हुये, साष्टांग दन्डवत की और स्तुति करने लगे: =

जय जय अविनासी घट घट वासी , व्यापक परमानन्दा ॥
राजिव लोचन भव भय मोचन, गावहि मुनि नरनन्दा ॥
माया गुण ज्ञाना- तीत अमाया , वेद पुराण भनन्ता ॥
करुणा सुख सागर सब गुन आगर , ध्यावे सुर नर सन्ता ॥

यह स्तुति करने के पश्चात नारद पांव पर गिर पड़े । भगवन् । तुम्हारी लीला अपरम्पार हैं । नाथ ! तुम सेवक के हितकारी हो । मैं जानता हुँ तुमने जो रुप इस समय धारण किया है वह मेरे संशय को दूर करने के लिये है । भगवन ! मैंने अनर्थ किया । तुमको अप शब्द कहे । छमा कीजिये और यह बताइये कि इस लीला का रहस्य क्या है ? विष्णु हंसे—'नारद ! तुम्हारे मन में भ्रम पैदा हुआ कि अच्छे लोग दुखी हैं और बुरे सुखी हैं। इस संशय को दूर करने को मैंने यह रुप धारण किया था । मैं अपने प्रेमी सेवको के संशय और भ्रम को नाना प्रकार से दूर करता रहता हुँ जिससे वह माया और मोह में न फंसे । ऐ नारद ! मैं ही यह खेल दिखाता रहता हुँ और मोह माया की फांसी काटने के लिये अनेक उपाय सोचता हूँ ।,

नारद— भगवन् ! तुमने इस धनाड्य के सोने चांदी के बर्तन क्यों चुराये ?

विष्णु = 'इसका कारण यह था कि वह व्यक्ति अत्यन्त अहंकारी और यश प्रिय

बन गया था । वह लोगों की आवभगत इस लिये करता था कि उसको नेक-
नामी मिले और इस झूठी नेकनामी के ख्याल से वह मेरी भक्ति का आदर न-
हीं करता था । जब उसका माल चुरा लिया गया, वह सबसे सावधान रहेगा ।
अभी तक इसने अतिथि सेवा का अपनी नेकनामी का साधन मान रक्खा था ।
इसको यह समझ नहीं थी कि असली नेकनामी केवल ईश्वर के प्रेम भक्ति में है
और उसी से घनिष्ट सम्बन्ध रखना चाहिये । मैंने जान बूझकर उसके दिल को
धक्का दिया । तुम देखोगे कि अब जहां अतिथि सेवा करेगा साथ ही झूठी प्रशं-
शा न चाहेगा और मेरी भक्ति की ओर लगेगा ।

नारद— "आपने कंजूस को क्यों यह बर्तन दिये ?"

विष्णु - 'इसलिये कि वह समझ जाय कि यदि मैं ईश्वर के भक्तों की सेवा कर-
ता रहूँगा । तो मुझको बहुत कुछ मिल जायेगा । इस ढंग से मैंने उसको आत्म
ज्ञान का पाठ पढ़ाया है । ऐ नारद ! इस तरह के पाठ कई प्रकार पढ़ाये जाते
हैं और मैं स्वयं इन पाठ पढ़ाने के क्रम में व्यापक रह कर प्राणियों को अपनी
भक्ति की ओर आकर्षित करता रहता हूं ताकि वह पथ भ्राष्ट न हो ।

नारद "आपने अबोध बालक का गला क्यों दबा दिय ?"

विष्णु — यह व्यक्ति मेरा बड़ा भक्त है मगर जिस समय से इसके घर में ब-
च्चा पैदा हुआ है इसका प्रेम मेरी ओर से खिंच कर इस बच्चे में आ रहा था
और वह ईश्वर विमुख हुआ जाता था । उसको सत मार्ग पर लाने का और को-
ई उपाय नही था । अब बच्चा नही है ! वह राजी व रजा है और मेरी स्तुति
गा रहा है । ऐ नारद ! जो कुछ मैं करता हू सोच समझ कर करता हूँ । मैं इस
जगत का करता धरता हूँ ।

नारद - "भगवन । यह कहिये कि यह खेल आपकी माया की लीला थी या इस-
की कुछ असलियत भी है ?"

विष्णु - (मुस्कराकर) यह सब मेरी माया के तमाशे हैं । मैं माया को
इसी लिये प्रेरित करता रहता हूँ कि भक्तों के अनुभव बढे और वह अपनी बि-
गडी को बनालें । यह दुख सुख के दृश्य जो तुम देख रहे हो, उद्देश्य रहित नहीं
... में कोई विशेष नियम काम करता है । नारद की सन्तुष्टि हो

गई । उन्होंने फिर विष्णु की स्तुति की -

जय जय सुरनायक - जन सुख दायक,
कृपा सिन्धु भगवान हरी ।
जय जय दुख भंजन, जन मन रंजन,
जय जय जय बलवान हरी ॥

नारद रोते हुये भगवान के चरणो पर गिर पड़े । विष्णु ने उनको उठा कर छाती से लगाया । आकाश से धन्य धन्य की ध्वनि हुई । देवता फूलों की वर्षा करने लगे और ब्रह्मा, शिव, प्रजापति सब उपस्थित होकर एक स्वर से विष्णु की स्तुति गाने लगे ।

ईश्वर इस प्रकार काम करता हैं । कैसा अज्ञानी और अभागी वह पुरुष है जो ईश्वर की भक्ति को छोड कर व्यर्थ मेरे तेरे पने में अपना समय नष्ट करता रहता है और ईश्वर परायण होने की छोड़ कर पथ भ्रष्ट होता हैं ।

मैं तुम से बार बार क्या कहूँ । दुनिया में हर जगह, हर घटना, हर दृश्य और हर बात में चमत्कार हैं । वह प्रेम स्वरुपी मूर्ति काम कर रही है । इसके नियम ज्ञाता बनने की इच्छा करो । इसके रंग में मस्त रहो । नित्य प्रति ऊँचे चढ़ने का साधन करो । ईश्वर से चित्त की दृढ़ता, आँखों की दृष्टि, बुद्धि की पहुच के लिये प्रार्थना करते रहो । जीवन के खेलों को देख कर उदास मत हो । यह दुख जो तुमको दिये जा रहे हैं मज़लहत और मौज से हैं । ईश्वर तुमको प्रेम करता है । वह प्रेम मूर्ति है वह तुम्हारा मित्र है । इसकी देन को स्वीकार करो । चाहे वह विष हो या अमृत हो । इसको लेकर सिर पर चढ़ाओ और प्रेम से पी जाओ । यह रजा और तसलीम का तरीक है या ईश्वर परायण होने का मार्ग है ।

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज का

शब्द

काम करता हूँ तेरा स्वामी, सदा निष्काम बन ।
लाभ की और हानि की, चिन्ता नही कुछ मेरे मन ॥
मौज का लेकर सहारा, हूं मैं जीवन काटता ।
चाहे रक्खे घर में, चाहे भेज तू सघन बन ॥
चित में क्यों हो भ्रान्ति, जव तू सहायक हो गया ।
आस है तेरी दया की, और नहीं कोंई जतन ॥
जीने की इच्छा नहीं, मरने से भय खाता नहीं ।
दोनों ही सम हो गये हैं, मुझ को अब जीवन मरन ॥
राधास्वामी नाम हो, होठों पर सोते जागते ।
राधास्वामी का हो निशदिन, ध्यान और सुमिरन भजन ॥
जग की लीला देखली, स्वारथ के साथी हैं सभी ।
अपना कोई भी नहीं, इससे लगी तुझ से लगन ॥
स्तुति निन्दा का डर अब, मन को सताता है नहीं ।
मैं हूँ जैसा जानता है, तू करु मैं क्या कथन ॥
मेरे दाता दीन हूँ, आधीन हूँ मैं सर्वदा ।
यह दया कर तेरी बानी, का रहे श्रवन मनन ॥

जीवन व्यवहार और शरणागति

[ले० परम संत दयाल फकीर चन्द जी महाराज]

ऐ देवीचरन !

तुम्हारा पत्र आया कि शरणागति पर मैं अपना विचार प्रकट
करूँ । यह जो कुछ मैंने किया है या लिखा है यह सब मेरी रिसर्च

(खोज) जो इस संसार में सुखी रहने और मालिक के प्रेम और मिलाप के सिलसिले मैंने की , इसका परिणाम है । मुझे कोई कष्ट नहीं । अब मैं यम नियम धारण , ध्यान , समाधि योग आदि के अनुभव कर लेने के पश्चात; शरणागत होने को विवश हो रहा हूँ

अभ्यास किया, अन्तरीय प्रकाश देखे, अन्तर में घंटा, शंख, मृदंग, बाँसुरी बीन आदि के शब्द सुने । ऋद्धि सिद्धि शक्तियाँ भी मिलीं । मान सम्मान भी मिला मगर फिर इन सब से उत्थान हुआ मनुष्य हर समय साधन अवस्था में नहीं रह सकता । उत्थान होना लाजिमी है । साधन में आनन्द लिया मगर उत्थान के बाद वह आनन्द समाप्त हो गया ।

जब उत्थान हुआ पहिला चक्र समाप्त हुआ और दूसरा चक्र प्रारम्भ हो गया अर्थात पहिली अवस्था समाप्त हो गई और दूसरी आ गई । इन अनुभवों ने सिद्ध किया कि सब प्रकार के साधन और उनके फल चिरकाल तक रहने वाले नहीं हैं । अस्थाई हैं अब केवल यह करना है कि अपने आपको जीवन की हर एक स्थिति में मालिके कुल, निज स्वरुप परमतत्व आधार, अनाम, अकाल, या राधास्वामी दयाल के समर्पण करता रहता हूँ । साधन करता हूं । यह भी किसी शब्द या प्रकाश के सुनने या देखने के लिये नहीं करता किन्तु वह स्वाभाविक ही पैदा होते रहते रहते हैं । मैं अपने आपको केवल उसी शक्ति के सुपुर्द करता हूँ और इस कर्म से शान्ति लेता रहता हूं । मौज का आसरा रखता हूं ।

मेरे चित्त में यह ख्याल था कि मैं इन मंजिलों या श्रेणियों से गुजरने के बाद कुछ सफलता प्राप्त कर लुँगा जो चिरकाल तक स्थाई रहेगी किन्तु यह गलत सिद्ध हुआ । देखो कम से कम ८० स्त्रियों के बच्चे मेरे प्रसाद से हुये किन्तु मेरी लड़की की शादी को १६ वर्ष हो गये और कोई सन्तान नहीं हुई । तीन व्यक्ति दिल के रोग से बीमार थे । केवल मेरे वचन से उनके कथनानुसार बिना

किसी औषधि के वें निरोग हो गये। मेरी स्त्री ६॥ वर्ष दिल की रोगी रह कर चल बसी। मैं स्वयं बीमार हुआ। मालिक ने दया की कि पहिले से अच्छा हूँ तीन पागल व्यक्ति मेरे नमक के प्रसाद से स्वस्थ हो गये। मेरी बड़ी लड़की आधी सी पागल है मगर मैं उसे ठीक न कर सका। सोचता था कि मैं जगत कल्याण के विचारों का प्रचार करूँगा तो जानता मैं वहतरी होगी। देश का विभाजन देखा। देश मैं कैसी दुर्दशा हुई। इस लिये मैं उस सर्वाधार मालिक के शरणागत होता रहता हूँ। केवल शरणागत, किन्तु जन साधारण जब तक वह स्वयं अनुभव न करलैं, ऐसा नहीं कर सकते। मैं दाता दयाल (महर्षि शिव) का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मेरे जीवन को अनुभवों से गुजरने का अवसर दिया। कई बार ख्याल आता था कि मुझमें कमी होगी। वह विचार भी जाता रहा क्योंकि सन्त या सतगुरू कहलाने वाले महा पुरूषों के जीवन देखे और सुने। आँख खुल गई।

दाता दयाल (महर्षि शिव) का धाम (राधास्वमी) उजड़ गया। क्या वह ऐसा चाहते थे ? नहीं। मौज !

सन्त तुलसीदास रामायण के रचियता, स्वामी राम कृष्ण परम हसं तथा अन्य महा पुरुष भयंकर रोगों में ग्रसित होकर संसार से चल बसे। पल्टू साहब को उनके विरोधी साधुओं ने तेल के उबलते हुये कढ़ा में डाला। शम्स तबरेज, ईसामसीह स्वामी दयानन्द तथा अन्य महापुरूषों के जीवन का परिणाम जब सामने आता है तो आश्चर्य होता है। इसलिये ऐ देवीचरन ! मैंने जीवन में किसी बात का अहंकार नहीं किया। न गुरु बना और न कुछ और। यदि दूसरे महापुरुषों की तरह सार बात के प्रकट करने में पर्दा रखता और प्रोप्रेगंडा कराता तो आज बड़ा धनवान होता। लाखों आदमी मेरे अनुयायी होते किन्तु मेरे अन्तः करण ने इसको स्वीकार नहीं किया ... जीवन के अनुभव के बाद हौसला करके मौज आधीन जग-

॥ मनुष्य बनो ॥

कल्याण की दृष्टि से "मनुष्य बनो,, की आवाज उठाई। मनुष्य उस मालिकेकुल, परमतत्व जो सबका आधार है, का विश्वास और श्रद्धा रखते हुये इस जीवन में निरहंकार होकर अपने कर्मों के भोग भोगते हुये भविष्य में निजी स्वार्थ, मान सम्मान, धन सम्पत्ति के लिये हेरा फेरी न करता हुआ अपने कर्त्तव्य को निभाता रहे। शेष सब काम मालिकेकुल सर्वाधार के समर्पण करते हुये रहना ही मेरे अनुभव में सही रास्ता है। यह इस समय तक जीवन में मेरी खोज का निष्कर्ष है कल को क्या हो, वह मालिक जाने।

मनुष्य का मन चंचल है बुद्धि निर्मल नहीं है इसलिये सुमिरन ध्यान और भजन का साधन है। बुद्धि को निर्मल करने के लिथे किसो पूर्ण पुरुष का सत्सगं परमावश्यक है।

सच्चे हृदय से चाहता हूं कि मानव जाति सुख शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करे। पारस्परिक एकता और प्रेम रहे। खाने को रोटी, पहिनने को कपड़ा, रहने को घर, शुद्ध बुद्धि और मन की शान्ति सब को प्राप्त हो। मोक्ष या मुक्ति आदि सब मालिक की दया पर निर्भर हैं।

मैं सच्चे हृदय से आपका, विश्व प्रेमो श्री मुशी लाल और नंद भाई का कृतज्ञ हूं जिन्होंने मेरे कर्म काटने या दाता दयाल की आज्ञा पालन में मेरी सहायता की। मेरे लेख और प्रवचन बुद्धि को निर्मल करते हैं।

नोट :—रात को यह पत्र लिखा। सो गया। अपने अन्तर उस मालिकेकुल, परमतत्व, जात, अनाम, अकाल, या राधास्वामी दयाल के शरणागत होने लगा। मन से तो शरणा गति समाप्त हो चुकी हुई है। मन का काम रुप रगं बनाना है। मेरा मन अब रुप रगं नहीं बनाता। यह रूप रगं आदि वह होते हैं जिनका सन्सकार दमाग पर कुछ पहिले जन्मों का होता है और कुछ इस जन्म के ...हय प्रभ...ों का परिणाम होता है ...

शब्द और प्रकाश (नूर) में चली गई। वहाँ खिचा रहा। उसी में खिचाव और आनन्द रहा। किसी किसी समय उस अवस्था से नीचे मन में आया तो स्वप्न की अवस्था आई। उस स्वप्न में मुझे कभी कभी रेल और तार के दृश्य सामने आते रहे। फिर स्वप्न समझ कर शब्द और प्रकाश के मंडल में ऊपर गया। इसी तरह रात व्यतीत हुई। प्रातः होश आया। बिचार आया कि यह क्या खेल है? यह जीवन क्या है?

जिन्दगी यह चेतन्य का है बुलबुला मेरी समझ में आ गया।
मौज हस्ती का खेल है जिसने इसे बना दिया ॥
क्या कहूँ मैं कौन हूँ कुछ भी नहीं सब कुछ हूँ मैं।
मौज मालिक है सभी अन्त मैं न पास का ॥
जितना है पाया अन्त उतना कह चला बे खौफ हो।
इसलिये शरणागतम के सिवा नहीं कोई चारा रहा ॥

वह एक तत्व है। वही भिन्न भिन्न रूपों में हर लोक, हर ब्रह्माण्ड, हर जीव में क्षाभ के रूप में रम रहा है और रमता राम बनकर खेलता है। इस खोज से शान्ति मिली। यह काम मेरा भी उसीका है।

क्या करूँ अहंकार मैं और क्या कहूँ मैं क्या हुआ।
मजबूर होकर मौज के आसरे पर शरणागत हुआ ॥
शरण भी है आप उसकी कहने को कुछ न रहा।
ऐ देबीचरन ! खुश रहो, फकीर अब चुप हुआ ॥
मौज ले आती है फिर नीचे कराती कर्म है।
चुपचुपी में आकर के 'फकीर' शशदर, हुआ ॥ (१) दीन

॥ मनुष्य बनो ॥

विश्वास और शरणागति

ले० परम संत दयाल फकीरचन्द जी महाराज]

अजीज देबीचरन ! तुम शरणागति के विषय पर और अधिक व्याख्या चाहते हो। मैंने किसी पुस्तक या किसी महापुरुष के बचनों के आधार पर कोई काम नहीं किया। मानव जीवन कुछ चाहता है यह चाह करोड़ों प्रकार की है। मैंने पिछले लेख में शरणागति को अंतिम अवस्था बर्णन है, जब जीवन का काफी अनुभव मनुष्य को हो जाता है। शरणागति कहते हैं सहारा लेने को। सहारा जब लिया जाता है जब जिस बस्तु से, जिस शक्ति से या जिस मनुष्य से मानव की कामना पूरी होती हो। इसका सहारा लेना शरणागति है। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न प्रकार की इच्छाअ को पूरा करने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के सहारे लेना लाजिम हो जाते हैं। सहारा वही लेता है जिसको कोई चाह होती है या कामना होती है। सहारा लेने वाले को इस बात का बिश्वास होना चाहिये कि जिस शक्ति का, जिस मनुष्य का और जिस बस्तु का सहारा लिया है वह सहारा देने के योग्य है इसलिये शरणागति के नियम पर चलने साथ विश्वास का होना आवश्यक है। बच्चे को यह विश्वास है कि माता पिता उसके हैं। विद्यार्थी को यह निश्चय होना चाहिये कि उसका अध्यापक योग्य है। व्यौपारी को भी यह विश्वास होना चाहिये कि जिस जगह वह व्यापार करता है वहाँ की परिस्थितिताँ और स्थान व्यापार के लिये लाभदायक हैं। इसी प्रकार परमार्थ में भी इस बात का विश्वास लाजिमो है कि ईश्वर ही कर्त्ता है अथवा इसका गुरु पूर्ण है। जब तक विश्वास न हो ता सच्चे अर्थों में न कोई शरणागत हो सकता है न शरणागत होने को कोई लाभ। जब कोई चाह नही रहती, जीवन और मृत्यु का डर नहीं ।। उस समय शरणागति का सबाल ही नहीं रहता।

'तुमने शरणागति की व्याख्या को लिखा, इस लिये कि

जीवन और मृत्यु का ख्याल दिमाग में मौजूद है। यह काम जो मैंने तुमको दिया है इसी लिये दिया है कि असलियत और हकीकत का निज अनुभव हो जाय और तुम हमेशा के लिये इस जीवन के खेल से मुक्त हो जाओ। मेरी हालत देखो। जहाँ चला था शरणागत होता हुआ आ रहा हूँ। आज वह दिन आ कि दिमाग में न शरण रह गई और न शरणागत होने वाला रह गया और न वह शक्ति रही जिसकी शरण लूँ वह शक्ति जो समस्त सृष्टि रचना या ब्रह्माण्ड का आधार है पहिले तो ख्याली या कल्पित थी। इस आधार को कभी राम के रुप में माना, कभी कृष्ण में माना। फिर दाता दयाल (परम पुरुष महर्षि शिव) में माना, जिन्होने यह खेल खिलाया। जीवन का अनुभव कराकर उस आधार जिससे तमाम रचना होती है, उसके शरणागत होने के लिये विवश किया और यह अवस्था गुरु पदवी पर आने से हुई। जब मेरा रुप दूसरों के अंदर प्रगट हुआ और उनकी सहायता की तब आँख खुली कि मैं तो किसी के अन्दर जाता नहीं, फिर वह कौन है। वह है मनुष्य का अपना ही आत्मा। जब अकेला बैठता हूं एक ऐसी हालत दिमाग में छा जाती है जिसमैं एक परम शान्ति और सब कुछ भूल जाने की अवस्था होती है।

यही जीवन का आदि है और यही अन्त है अब विदेह गति में रहता हूँ। मालिक करे तुमको भी इस अवस्था का इसी जीवन में अनुभव हो जाय। हो रहा है। यह दुख सुख इसी लिये आते हैं जीवन क्या है इसका ज्ञान शरणागति होने के पश्चात हुआ। लब खुले और बन्द हुए, यह राजे जिन्दगानी है।

नोट- हिन्दू जाति के ऋषि बड़े ही योग्य पुरुष थे। उन्होंने लोगों की हर प्रकार की वासनाओं की पूर्ति के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के सहारे दिए हुये हैं। जैसे यदि धन की इच्छा है तो लक्ष्मी का सहारा लो। विद्या की इच्छा है तो सरस्वती का सहारा लो आदि आदि

श्रुति और शरणागति

(इस श्रुति का हवाला महर्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी पुस्तक 'साधन , में शरणागति (Surrender) को वर्णन करते हुये दिया है ।

यदेतत् हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ।

अर्थ— यत (जो) तत (यह) हृदय (अन्तःकरण) मम (मेरा है) एत (यह) अस्तु (होवै) हृदय (अन्तःकरण) तव (तेरा) ।

समस्त कामनायें या इच्छायें हृदय से उत्पन्न होती हैं। यहाँ ईश्वर से यह प्रार्थना की गई है कि मेरा हृदय तेरा हृदय हो जाय अर्थात मेर अपनी कोई इच्छा , कामना वासना आसत्ति तथा ममता न रहे । जो हो वह तेरी इच्छा हो ।

गीता और शरणागति

महाभारत के युद्ध में अर्जुन रणक्षेत्र में खड़ा है । अपने परिवार सम्बन्धियों तथा आचार्यो के विपक्षी दल को देख कर उसका हृदय करुणा से भर गया। शरीर कम्पायमान हो गया गाँडीव धनुष हाथ से गिर गया । उस समय वह श्री कृष्ण भगवान से कहने लगा कि मैं इनको मार कर तीनें लोक का राज्य नहीं चाहता । मैं युद्ध नहीं करुंगा मैं आपकी शरण हूं और आपका शिष्य हूँ । आप मुझे शिक्षा दीजिये कि मैं क्या करूं ।

श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन की दीन दशा तथा शिष्य भाव देखकर उसे कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग का उपदेश दिया. उसके पश्चात वे कहते हैं कि ईश्वर समस्त प्राणियों में विद्यमान है सब उसी के चलाये चल रहे हैं तू उनकी शरण ले । तत्पश्चात और भी महत्वपूर्ण बात कहते

कि तू मेरा वहुत प्रिय है । मैंतुझे गोपनीय से गोपनीय रहस्य

बताता हूं और वह यह है कि तू मेरी ही पूजा कर, मेरी ही भक्ति कर और मुझे ही नमस्कार कर। इतना कहने के पश्चात १८ वे अध्याय के ६५ वें श्लोक में फिर स्पष्ट रुप से अन्तिम बात उन्होंने यह कही कि तू सम्पूर्ण धर्मो को छोड़कर मेरी शरण में आजा ।मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा।

अतः शरणागति महत्व पूर्ण अमोघ योग है।

पहिले ६२ वें श्लोक में ईश्वर के शरणागत होने का उपदेश देकर फिर जीते जागते पुरुषोत्तम श्रीं कृष्ण ने अर्जन को गुरु रुप में अन्तिम उपदेश दिया कि गुरु रुप की शरण में आजा ।

ऊपर बर्णित शिक्षायें गीता के १८ वें अध्याय के ६१ से ६५ वें श्लोक में दी गई है जो निम्न लिखित हैं: —

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि माययां ॥ (१८ / ६१)

हे अर्जुन ! शरीर रुप यंत्र में आरुढ़ हुये सम्पूर्ण प्राणियों को परमेश्वर अपनी माया से भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है ।

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत ।
तत्प्रसादात्पराम शान्ति स्थानं प्राप्स्यशि शाश्बतम ॥
(गी० १८ । ६२)

हे भरत वंश अर्जुन ! सब प्रकार से तू उसी ईश्वर की शरण में जा। उसी के अनुग्रह से तुझे परम शान्ति प्राप्त होगी और अबिनाशी पद प्राप्त होगा।

ईति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्माद,गुह्मतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु । (गी० १८ । ६३)

हे अर्जुन ! यह गोपनीय से भी गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिये कहा है। इस सबको सोच विचार कर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा

सर्वगुह्यतम भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम ।।६० ।।

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय मेरे परम बचन को फिर भी सुन तू मुझको अत्यन्त प्यारा है इसलिये यह परम हितकारक वचन तेरे लिये कहूंगा

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।६०।।

हे अर्जुन ! तू मुझसे ही चित्त लगा, मेरी ही भक्ति कर, मेरा ही पूजन कर, मुझको ही नमस्कार कर जो तू ऐसा करेगा तो मेरे को ही प्राप्त होगा ! तू मेरा प्यारा है इससे मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६६।।

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण विधि बिधान और धर्मो को छोड़कर एक मेरी शरण में आ । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा । तू शोक मत कर ।

गुरु नानक और शरणागति

शब्द

ठाकुर तुम शरणाई आया ।
उतरि गया मेरे मन का संशा, जबसे दर्शन पायो ॥
अन बोलत मेरी विरथाजानी, अपना नाम जपाया ।
दुख नाठे सुख सहजि समाये, अनंद अनंद गुण गाया ।।
बाँह पकरि कढि लीने अखुने, गृह अंध कूपते माया ।
कहु 'नानक' गुरु बन्धन काटे, बिछुरत आन मिलाया ।।

रामायण और शरणागति

किष्किन्धा काण्ड में तुलसीदास लिखते हैं:—

सुखी मीन जहाँ नीर अगाधा ।
जिमि हरि शरण न एकौ बाधा ।।

कैसा सुन्दर भाव है ! भगवान की शरणागत होने पर कोई चिन्ता, कोई दुख, कोई बाधा इसी प्रकार नहीं रहती जैसे मछली अथाह जल तृप्त हो जातीं है ।

विभीषण की शरणागति

कुटुम्ब तजि शरण राम ! तेरी आयो ।
तजि गढ लंक महल औ मंदिर, नाम सुनत उठि धायो ॥
भरी सभा में रावण बैठ्यौ, चरण प्रहार चलायो ।
मूरख अंध कह्यो नहि मानै, बार बार समझायो ॥
आवत ही लंकापति कीनो, हरि हंस कंठ लगायो ।
जन्म जन्म के मिटे पराभव, राम दरस जब पायो ।।
हे रघुनाथ ! अनाथ के बन्धु ! दीन जान अपनायो ।
'तुलसीदास' रघुवर की शरणा, भक्ति अभय पद पायो ।।

(महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज का शब्द)

।, मौज ।।

मौंज परखो मौज के, अनुसार सारा काम हो
मौज का लो आसरा, और मौज में विसराम हो
मौज से होता है सब कुछ' मौज में बरतो सदा
मौज में रह पाओ सुख, निर्द्वन्द और निष्काम हो
मौज में रहते हैं सेवक, मौज़ की गति को परख
भय नहीं चिन्ता नहीं, चित में न इसका नाम हो
ध्यान और सुमिरन भजन, नित नियम लो अपना बना
गुरु की चर्चा रात दिन हो, और आठों याम हो
पूरी होगी कामना, संदेह कुछ इसमें नहीं
हो तुम्हारा इष्ट मन में, राधास्वामी धाम हो

शरणागति पर महत्वपूर्ण बातें (संत की दृष्टि से)

(परमसंत दयाल फकीर साहब)

शुरू में विचार से ही शरणागत होना पड़ता है। विचार से मनुष्य शरणागत तब होता है जब या तो बुद्धि काम नहीं करती या कोई कामना, बासना या इच्छा पूरी नहीं होती। विचार द्वारा शरणागत होने से स्वाभाविक रूप से उस समय बेसुधि आजाती है। इसी को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इस से उत्थान होता रहता है। फिर मनुष्य बिचार से शरणागत होकर काम करता है। इस प्रकार ख्यालो तौर से मनुष्य का मन शरणागत होता रहता है।

आत्मा में शरणागत होना दुनियादारों का काम नहीं है। यह केवल उनके हिस्से में आता है जो आत्मास्वरूप या प्रकाश और शब्द में रहते हुये भी किसी वस्तु कौ खोज करते रहते हैं। शब्द और प्रकाश में गति है, हरकत है, चेतन्यता है। जब चेतन्यता का अन्त नहीं मिलता उस समय सुरत (आत्मिक-धार) होती है। उस शरणागति का दूसरा नाम निरत (ठहराव या स्थि-

रता) है। चूंकि निरत से भी उत्थान होता रहता इसलिये निरत रहती हुई हमारी चेतन्य अवस्था उस अनामी धाम या अकाल पुरुष जहाँ सुरत निरत होकर अपना अस्तित्व खो जाती है उसकी खोज करती रहती है। जब तक जीवन है सिवाय शरणात होने के कोई और चारा शान्ति का या ठहराव का नहीं है। इसलिये भक्ति पंथ ही संतों का इष्ट है ।

शरीर के रहते हुये किसी बाहरी सहारे के शरणानत होना, मन में रहते हुये किसी रूप के, आत्मा में रहते हुये प्रकाश के और शब्द में रहते हुये शब्द शरणागत होने तक का मुझे अनुभव है।

सुरत हुई अति कर मगनानी। पुरुष अनामी जाय समानी ॥

जिसको यह ज्ञान हो जाता है कि मन से निकले हुये हर प्रकार के विचार रूप और रंग कल्पित अर्थात नाशवान हैं और इस पर दृढ हो जाता है उस समय उसको मन से शरणागत होने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि मन के खेल को कल्पित समझने के कारण उस मन के खेल के प्रभाव (सुरत को) दुख सुख का कारण नहीं बनते। फिर केवल सुरत की शरणागति रह जाती है। वह शरणागति तब होगी जब वह शब्द में आजायेगी क्योंकि सुरत वास्तव में शब्द की चेतन्यता का नाम है। सुरत शब्द से निकलती है यही राधास्वामी मत की वाणी है कि आदि में शब्द हुआ और शब्द से सुरत का क्रम जारी हुआ।

मन की शरणागति की अवस्था का नाम महासुन्न है अर्थात निर्विकल्प समाधि है। यह अवस्था तब आयेगी जब प्रेम से आयेगी । विचार से भी हो सकती है मगर मुझे प्रेम मार्ग का अधिक अनुभव है।

शरीर से शरणागत होना देह से बेसुधि है।

जब तीनों प्रकार की शरणागति का अनुभव हो जाता है फिर उसका जीवन तीनों खेलों का साक्षी हो जाता है। वह फिर खेल–शारीरिक, मानसिक और आत्मिक है। इस अवस्था को विदेहगति कहते हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—शरणागत होना किसे कहते हैं ?

उत्तर=शरण का अर्थ है रक्षा, आश्रय अर्थात किसी की रक्षा या सहारा लेना और शरणागत का अर्थ है शरण में आया हुआ।

जब मनुष्य को मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति में अथवा वह अपनी आपदा के दूर करने में अपने को असमर्थ पाता है तब वह मालिक, ईश्वर या गुरु का सहारा या रक्षा लेने को विवश होता है। यही शरणागति है।

प्रश्न—क्या यह भी योग है और क्या इसके लिये कोई साधन करना पड़ता है ?

उत्तर—हाँ यह भी एक प्रकार का योग है मगर पहिले योग के अर्थ समझ लेना आवश्यक है। योग का अर्थ है—मेल, मिलाप, उपाय, ध्यान, संगति प्रेम नियम, आदि। पातंजलि योग में 'योगश्चः चित्त वृत्तिनिरोध' अर्थात चित्त की वृतियों को रोक कर एकाग्र करना ही योग हैं जब मनुष्य मन को सब ओर से हटाकर एक ही की ओर ध्यान लगाता है तब ही सफलत प्राप्त कर सकता है इसी का नाम योग है। इस मार्ग पर चलने वालों को मन को काबू में या वश में करके एकाग्र करना है और सब ओर से हटाकर केवल मालिक, ईश्वर या गुरु के अर्पण करना है। केवल इतन ही साधन करना है।

प्रश्न—इस मार्ग के जिज्ञासु को प्रारम्भ में क्या करना चाहिये ?

उत्तर=प्रारम्भ में विचार द्वारा ही मालिक, ईश्वर या गुरु को ही सब कुछ माने, तन, मन, धन, सब उसी के समझे और सर्वस्व उसी के अर्पण कर दे और इस विचार को दृढ करता चले।

प्रश्न=मगर विचार तो बदलता रहता है। विचार द्वारा शरणागति स्थायी नहीं रह सकती। फिर क्या करना चाहिये ?

उत्तर=विचार के साथ श्रद्धा, विश्वास और प्रेम का होना परमावश्यक है। फिर उसमें दृढता आजाती है और विचार स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न=शरणागति का मार्ग प्रेम, भक्ति तथा दीनता का मार्ग है। इसमें वन्त वो रहते हैं। फिर द्वैत भाव में निर्वाण या मुक्ति कहाँ हुई

है ?

उत्तर=बिना दो के प्रेम नहीं हो सकता । प्रेमी को प्रेमास्पद ता भक्त के लिये भगवान का होना अनिवर्य है अन्यथा प्रें हो ही नहीं सकता । भक्त अपने भगबन्त को ही सब कुछ जानता, मानता और समझता है । सब कुछ उसी के अर्पण कर देता है और भक्ति की चरमसीमा पर पहुंच कर अपने को उसी में लय कर देता है । गसका लपनापन या अहं भाव ही नही रसता । उसका जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होता है । उसको कोई दुविधा या दुचिताई नहीं रहती जीवन एक रस रहता है । हर काम में, हर विचार में, भक्त अपने भगवन्त का ही कर्शन करता है । इस दृष्टि से भक्त के लिये निर्बाण या मुक्ति का प्रश्न ही नहीं रहता और न भक्त में मुक्ति की कामना होती है ।

प्रश्न—जिस दृष्टि से मैंने प्रश्न किया है उसका उत्तर नहीं आया । प्रश्न यह है कि उसका आवागमन समाप्त हो जाता है या नहीं ?

उत्तर–आवागवन के बिषय में भिन्न भिन्न बातें शास्त्रकारों ने कही हैं। संतों ने कुछ दूसरी बात कही है । आवागवन किसके लिये होता है ? शरीर का, मन का और आत्मा का । शरण का आवागमन मिटा तो सूक्ष्म शरीर का आवागवन रह भीं गया। यह मिटा तो आत्मा का रह गया। आत्मा जब निजस्वरूप में सर्वथा लय हो जाता है तो आवागवन पूर्ण रूप से समाप्त होता है । इस बिषय पर और अधिक समझना हो तो जीते जागते शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ज्ञान के अनुभवी सत्पुरुष परम संत दयाल फकीर चंद जी महाराज की अनुभवपूर्ण रचनायें–'आवागवन, 'सार का सार' 'मानव कल्याण' आदि पुस्तकों को पढ़िये ।

प्रश्न –जब भक्त या शरणागति में रहने वाला सब कुछ अपने भगवान को अर्पण कर देता है तो फिर वह सांसारिक या व्यवहारिक कर्म करता है ?

उत्तर—जब भक्त में अपने पन का भाव सर्वथा नष्ट हो गया या यों कहों कि उसे यह भान ही न रहा कि इस कर्म का करने वाला मैं हूँ या यह मेरा काम है तो उस अवस्था में जाकर वह सारे कर्त्तव्य कर्म अथवा जो भी कर्म उसे करने पड़ते हैं या व्यवहार में उसके सामने आते हैं, उनको वह भगवान या मालिक को समझ कर करता है । इस कर्म का कोई प्रभाव उस पर नहीं वह कर्म करता हुआ अकर्ता रहता है ।

देवीचरन मीतल ।

महर्षि शिव्रतलाल जी महाराज का शब्द
स्तुति

हम चाहैं तुझ एक को, और न जानें कोय ।
अब तो तेरे हो रहे, मन की दुर्मति खोय ।।
काम क्रोध क्या कर सके, चित में परम विवेक ।
वह विवेक एक परम है, मन से गथे अनेक ।।
मन की दुविधा मिट गई, प्रगट भयो निज नाम ।
दोनों ही से चित हटा, क्या माया क्या राम ।।
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ लूं गुरु नाम ।
आठ पहर चोंसठ घड़ी, गुरु सेवक बिन दाम ।।
लिखता हूँ गुरु नाम को, पढता हूँ गुरु नाम ।
भजता हूँ गुरु नाम नित, और न कोई काम ।।
पढना लिखना चातुरी, सबही गुरु के हेत ।
मैं तो गुरु का हो रहा, धन परिबार समेत ।।
राह चलूँ तो गुरु भजूँ, बैठे सुमिरूँ नाम ।
मेरे चित में गुरु बसें , छिन पल आठों याम ।।
बोलूँ तो गुरु नाम लूँ, खाऊँ गुरु परशाद ।
पिऊँ तो चरणामृत नित, त्यागूँ वाद विवाद ।।
राधास्वामी सतगुरु, दाता दीन दयाल ।
तुम चरणों में चित बसै, कर दिया मुझे निहाल ।।

प्रार्थना

[श्री भजन लाल जी एडवोकेट, अलीगढ़]

दुनियां का सब यह धंधा, लीला हैं तेरी भगवन ।
मैं भी हूँ एक खिलाडी, किसी खेल में लगा दे ।।
घोडे में या गधे में, इंसान या फरिश्ता ।
जिस रूप में तू चाहे, उस रूप में नचा दे ।।
चाकर का फर्ज यह हैं कि मालिक की जो खुशी हो ।
उस काम को ही दिल से, अंजाम कर दिखादें ।।
एक पाप है भंयकर, मालिक से अर्ज करना ।
मुझे खेल से छुडा कर, सारूप तू बना दे ।।
सेवा बतौर तेरे, तेरे प्राणियों की ।
करता रहूं निरन्तर, जिस तौर तू बना दे ।।
जाँ बाद खेल को तू, जब खत्म करना चाहे ।
तेरी रही यह इच्छा, मुझे चाहे जो बनादे ।।
मेरी नहीं ये सेवा, चूँ या चरा करूं मैं ।
अपनी रजा को भगवन, मेरी रजा बनादे ।।
तेरी शरण में भगवन, तत्पर रहूं निरन्तर ।
द्धि को मेरी ईश्वर, इस में लगा दे ।।

भूल सुधार

(माह अक्टूबर के अंक में पृष्ठ २८ से गलत पृष्ठ छप कर लग गये हैं। अतः आगे इस प्रकार पढ़ा जाय।)

नहीं है जो हर एक समझ सके।

वली—समझ गया। अब आप यह वतलाईये कि जब स्थूल शरीर के पश्चात सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म तत्वों के भंडार में मिल जाता है तो फिर क्या होता है ?

फकीर—अपने परमाणुओं के अनुसार ख्यालात ज्यों के त्यों स्थित रहेंगे। ख्यालों का भोग भोगने के पश्चात कारण शरीर अर्थात सुरत फिर स्थूल शरीर कीं ओर आकर्षित होगी।

वली—सुरत स्थूल शरीर में क्यों आयेगी ? वह कारण तत्वों के भंडार में क्यों न चली जायेगी ?

फकीर—स्थूल शरीर में इसलिये आना आवश्यक है कि कारण शरीर का रुझान नीचे अर्थात प्राकटय की ओर है। यदि उसका रुझान उच्च अवस्था की ओर होता तो स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म और कारण शरीर का भी, अभाव हो जाता और आवागवन से छुटकारा मिल जाता। स्पष्ट शब्दों में यों कहिये कि जब तक इन परमाणुओं में जिनको मैंने सुरत कहा है शक्ति है वह इस शक्ति के अनुसार गति करते रहेंगे।

वली—तो हमें इस गति को स्थायी रूप से बन्द करने के लिये क्या करना चाहिये।

फकीर—निष्काम (इच्छा रहित) होने का प्रयत्न हो। यदि ऐसा न कर सको तो जो जो इच्छा या कामना उत्पन्न हो उसे पूरा करो। इसी क्रिया या अमल को धार्मिक भाषा में प्रारब्ध कर्म भोग कहते हैं। जब यह भोग कट
निष्कामता आ जायेगी कर्म के भोगे बिना भी तो छुटकारा नहीं

वली—अच्छा तो मुझे क्या करना चाहिये ।

फकीर—तुम वैद्य हो । वैद्यक में दक्षता प्राप्त करो । लोगों को लाभ पहुँचाओ । इसी के द्वारा धन, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करो मगर ध्यान रहे कि दूसरों की भलाई मुख्य हो और साथ ही साथ अभ्यास चालू रहे ।

वली=धार्मिक जगत के लोग मान बढ़ाई और धन सम्पति की इच्छा को बुरा समझते है ।

फकीर—भली कही ! मुझे कोई ऐसा व्यक्ति बताओ तो सही जो बड़ा बनने और यश प्राप्त करने की इच्छा न रखता हो यहाँ धनवान धन को बढाना चाहता है । प्रतिष्ठा वाले प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं । भक्त भक्ति की उन्नति के इच्छुक हैं । योगी पूर्ण योगी होने का और निष्कामी पूर्ण निष्काम बनना चाहता है । वली ! बात चीत के कई ढंग हैं । दाता दयाल कहा करते थे - बढो, बढ़ो, खूब बढो । उपनिषद भी ऐसा ही कहते हैं=चलो, चलो, चले चलो और आराम तक का नाम तक न लो जब तक कि इष्टपद प्राप्त न हो संत यत की शिक्षा आलसीपने की नहीं है । हर काम में उन्नति ही उन्नति हो जहाँ यह शिक्षा है कि संतोष करो वह किसी अन्य दृष्टि से है ।

वली—हमारे शास्त्र तो आत्मा को अजर अमर और अद्वैत मानते हैं । इसमें क्या भेद है ?

फकीर—वहाँ आत्मा से अभिप्राय निजस्वरूप से है । वह सदा अजर, अमर और अटल है सांसारिक लोग बिना अनुभव प्राप्त किये नाम और शब्दों पर अटक कर आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं ।

वली—समझ गया । जिनका मन चंचल है अथवा जो अज्ञानी हैं वह केवल औषधियों से निश्चल चित और विवेकी हो सकते हैं । क्या आपका ख्याल यही है ना ?

फकीर—बली ! मैं आपसे सहमत हूँ । आपका विचार नितान्त ठीक है । यदि हो सके तो साथ साथ थोड़ा थोड़ा अभ्यास और सतसंग चालू रक्खो, फिर थोडे दिनों में मानसिक और आत्मिक जीवन उच्चतर हो सकता है ।

भोजन की शुद्ध कमाई का हो

यह कहावत प्रसिद्ध है—'जैसा अन्न वैसा मन'। कारण इसका यह है कि मन के परमाणु भोजन से बनते हैं। इसलिये इस बात की बड़ी- आवश्यकता है कि जो कुछ खाया जाय, वह शुद्ध पवित्र और लोहू पसीने की कमाई का हो। आहार जितना ही शुद्ध और पवित्र होगा उतना ही मन पवित्र बनेगा और आत्म ज्ञान की प्राप्ति में उतना ही सहायक होगा और शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

आहार के विषय में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं—(१) कभी भी किसी को दुखी करके प्राप्त न किया जाय क्योंकि इसमें उस दुखिया के दुःख के संस्कार मिले रहेगे जो मन को अपवित्र कर देंगे और वैसे संस्कारों का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। (२) यदि बिना सताये हुये भी वह हाथ आये, तब भी यह सोचना चाहिये कि हमको उसके लेने का अधिकार भी है या नहीं तथा किसी दूसरे ढंग से इसका हमारे हाथ आना कहाँ तक सम्भव था ? (३) वह किसी ऐसे के यहाँ से तो नहीं आया है जो हम से कोई काम निकालना चाहता हैं ? (४) जिसके यहाँ से आया हैं वह मनुष्य कैसा है और उसकी कमाई उचित रीति से शुद्ध है या अशुद्ध ? ५) चाहे वह किसी अच्छे ही मनुष्य का दिया हुआ क्यों न हो, परन्तु हमने स्वयं उसके लिये कुछ परिश्रम भी किया या नहीं ?

गृही का टुकड़ा कड़ा, नौ नौ अंगुल दाँत।
भजन करे तो ऊबरे, नहीं तो काढे आँत॥
गृही हक हलाल की, करे कमाई आप।
तब बनि आवै बन्दगी नही तो भोगे पाप॥

अच्छे मनुष्यों के यहाँ भोजन का लाभ बहुतों ने वर्णन किया है परन्तु वह भी सन्देह रहित नही है। इसलिये इससे बचने में ही भलाई है। कोई किसी का क्यों आधीन बने ! क्यों न गाढे पसीने की कमाई खाय ! तात्पर्य्य ह है मनुष्य अपने पाँव पर खड़ा हो, आवश्यकता और सहायता का धन मनुष्य

को असलियत से गिरा देता है और वह कहीं का भी नहीं रहता।

भिक्षा मांगना वैसा ही निषेध है जैसा घूस लेना, क्योंकि उसमें भी दूसरों के संस्कार मिले रहते हैं। बात स्पष्ट है। जिस से जो वस्तु लोगे, उसके लिये अवश्य ही कृतज्ञ होना पड़ेगा और तुम्हारा सर सदैव नीचा रहेगा चाहे कितनी ही स्वतंत्रता की डींग मारी जाय, परन्तु जब आँखे चार होंगी, उससे दबना ही पड़ेगा। यदि बाहरी व्यवहार में अकड के कारण न दबोगे तो मन की अन्तरी दशा का क्या करोगे ? वह तो सदैव मलीन और अपवित्र रहेगी। माँगना बुरा है, चाहे कुछ भी हो और किसी से भी हो। यदि कोई साधू भी किसी से मांगकर पेट भरता है तो कभी सम्भव नहीं है कि उसका मनय साधू रह सके और परमारथ के मार्ग में पवित्र रह सके यही कारण है कि सच्चे साधू किसी से कुछ नही लेते और कोई न कोई काम करके अपना काम निश्चल चलते हैं। माँगने के विषय पर संत कबीर का कथन है—

माँगन मरन समान है, मत माँगो कोई भीख
माँगन सों मरनों भलो, यह सतगुरु की सीख
मर जाऊं माँगू नही, अपने तन के काज
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज
माँगन भलो न बाप सों, जो विधि राखे टेक
माँगन हारा पातकी, सदा लजावे भेख
माँगन गये सो मर गये, मरे जो माँगन जाहिं
उनसे पहले वह मरे, जो होत कहत हैं नाहिं

परिश्रम की कमाई में बहुत बरकत होती है। हम तो इस नियम के पालन का ध्यान रखते हैं। बिरादरी के सम्बन्ध में जब कभी किसी के यहाँ खाना पड़ता है तो हम देखते हैं कि उस दिन मन चंचल हो जाता है और प्रायश्चित करने को जी चाहता है। इसलिये हम बार बार कहते हैं कि चाहे दुख उठाओ परन्तु किसी के हाथ न फैलाओ। यदि थोड़ा मिलता है तो थोड़े पर ही संतोष रक्खो।

सब से भली खीचड़ी, जामें पडे टुक लोन
चिकनी चुपड़ी खायकर, गला फसावे कौन
रूखी सूखी खायकर, ठंडा पानी पी
देख पराई चूपडी, क्यों ललचावे जी

भोजन का मन पर क्या प्रभाव पडता है उसके विषय में महाभारत से एक दृष्टान्त दिया जाता है। महाभारत के अन्त में भीष्म पितामह घायल होकर शर शय्या पर पडे हुये थे। पाँचों पाण्डव कृष्ण भगवान के साथ उनके दर्शन को आये। साथ में द्रौपदी भी थी। युधिष्ठिर इस राज ऋषि से धर्म संबन्ध प्रश्न करने लगे' जिनके उत्तर महाभारत में शान्ति पर्व में विस्तार पूर्वक दिये हुये हैं। द्रोपदी ने पूछा-- "महाराज ! इस समय तो आप धर्म की बातें बता रहे हैं मगर उस समय आपका धर्म कहाँ चला गया था, जब भरी सभा में दुष्ट दुश्शासन ने मेरा चीर पकड़ कर खीचा था और मुझको नंगी करने लगा था। क्षत्रियों का धर्म तो यह है कि वह ऐसी दशा में स्त्री की रक्षा करें परन्तु वहाँ सब चुप चाप बैठे बैठे ऐसा घोर अत्याचार देखा किये। पाण्डव तो जुये में हार गये थे। इसलिये बोल नहीं सकते थे, परन्तु आपको क्या हो गया था जो आपने इस अधर्म की रोक थाम नहीं की ?" भीष्म पितामह ने उत्तर दिया—"बेटी ! मैं उस समय दुर्योधन का अन्न खाता था। उस अन्न के प्रभाव ने मेरे धर्म संस्कार को दबा रक्खा था और विवश था। जो जिसका अन्न खाता है वह उसके आधीन ही रहता है और उसको वैसा ही करना पड़ता है जैसा अन्न दाता चाहता है।"

इसलिये यह ध्यान रखने और सावधानी बरतने की बात है कि जो भोजन खाया जाय वह अपनी सात्विकी कमाई का हो अन्यथा उसका प्रभाव स्वास्थ्य और मन पर बिना पड़े रह नहीं सकता।

मन का स्वास्थ्य पर प्रभाव

जिस प्रकार देह को रखने के लिये भोजन आदि में सावधानी रखना आवश्यक है, जैसा कि पीछे वर्णन किया गया है, उसी प्रकार मन के भोजन अर्थात भाव

और विचारों को ठीक रखना या सम अवस्था में रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्यों कि शरीर का मन से बड़ा गहरा सम्बन्ध हैं। शरीर मन की प्रेरणा में रहता है। अधिकतर पहिले मन के ही विचारों से शरीर में खराबी होती। इस प्रकार वह चक्र बना ही रहता है।

मन के विकारों या रोगों का स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है इसके दो उदाहरण देकर बात को स्पष्ट किये देते हैं। (१) रक्त संचार में भय या डर का भारी असर पड़ता है। जैसे ठंड से पानी जम जाता है उसी प्रकार भय के कारण रक्त जम जाता है। (२) क्रोध से शरीर में गर्मी व दाह उत्पन्न होती है कि शरीर उससे अन्दर हीं अन्दर झुलस सा जाता है क्रोध के कारण हृदय की धडकन तक बन्द हो जाती है। इसी प्रकार चिन्ता का बराबर बने रहना एक भारी विकार है। यह मन की पुन है। चिन्ता करने वाले का मन खोखला सा बना रहता हैं। चिन्ता का अर्थ यों ही उधेड बुन में पड़े रहना और बिना किसी निश्चय हुये दिमाग खखोरना है।

मन का सब से खराब विकार है अपनी निश्चय की हुई बात पर अमल न करना। अपने सिद्धान्तो को अपने जीवन का अंग न बनाना मानसिक अपच या ज्ञान का अजीर्ण है। जो व्यक्ति अपनी निश्चय की हुई बात पर अमल नहीं करता उसे शारीरिक अपच रहेंगा।

यदि किसी व्यक्ति को किसी सेवा के होने का बहम पैदा हो जाय तो वह बहम भी मनुष्य को स्वस्थ नही रहने देगा। किसी को रात को नीद नही आई, बस मन मैं रोग का बहम हो गया। बहमी लोग व्यर्थ की चिन्ताओं में फंसे रहते हैं।

विश्वास का भी स्वास्थ्य के साथ बहुत घना सम्बन्ध है। हमारे मन में यदि विश्वास हो जाय कि अमुक रोग हो गया है नो वह रोग न रहने पर भी हम उसमें बच नही सकते।

काम, क्रोध, शोक, लोभ, मोह, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि मन के रोग हैं। जब इन में से किसी एक का वेग हो जाता तो शरीर उसी में घुल जाता है। इस मन को काबू में रखना या इसको समता की दशा में रखना

अत्यन्त आवश्यक है। इसको काबू या समता में रखने के लिये जप, तप, योग, सत्संग आदि बताये गये हैं।

जिस तरह शरीर के रोगों की चिकित्सा होती है उसी प्रकार मन के रोगों का भी इलाज है।

शारीरिक रोगों चिकित्सक वैद्य और डाक्टर हैं तो मन के रोगों के चिकित्सक हैं अनुभवी पूर्ण संत, जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक पिछले लेख में दिया जा चुका है।

यहां इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जब हम यह भूल जाते हैं कि हम परम तत्व सर्वाधार के अंश हैं और शरीर और मन दोनों के मालिक हैं तभी यह मन समता से बाहर हो जाता है और हम पर सवारी करने लगता है। हम घोड़े पर सवार नहीं रहते किन्तु घोड़ा हम पर सवार हो जाता है। इसलिये हमको निरंतर अपनी सच्चाई और यह कि 'हम कौन हैं' स्मरण रखना चाहिये और इसे अपने मस्तिष्क में स्थित कर लेना किन्तु यह बिना साधन और सत्संग के स्मरण रखना इतना आसान नहीं है जैसा प्रतीत होता है। फिर भी स्मरण रखने, समझने और जानने का बराबर पूर्ण प्रयत्न करते रहना चाहिये।

स्वास्थ्य पर कुछ महानुभावों के अनुभव

मानसिक दुर्बलता को दूर करने के लिये शारीरिक शक्ति का संचय आवश्यक है। बिना आरोग्य और शारीरिक बल के पुण्य के दर्शन असम्भव हैं।

—स्वामी विवेकानन्द।

शारीरिक उन्नति के बिना जीवन की कोई सफलता नहीं मिल सकती। अतएव, हमारे जीवन का सबसे बड़ा उद्धेश्य स्वास्थ्य और शक्ति है।

—स्वामी रामतीर्थ।

मानसिक स्वास्थ्य के लिये शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है।

—स्वामी राम कृष्ण परमहंस।

स्वास्थ्य नहीं तो कुछ नहीं। इसलिये जितने जप, तप, योग, ध्यान, क्रिया-कर्म तीर्थ व्रत आदि हैं इसके बिना नहीं होते।

(१) देह, मन और आत्मा—मनुष्य इन ही तीन चीजों से बना है।

(२) देह मकान है। मन हथियार है। आत्मा कारीगर है। (३) मकान मजबूत और सुखदायक और अच्छा रहे, औजार साफ रहे, तेज और काम करने वाला हो, आत्मा तब काम करने के योग्य रहती है। 'शिव'

ब्रह्मचर्य्य और भोजन में अत्ययन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना ब्रह्मचर्य्य के धारण किये आत्म संयम असम्भव है।

भोजन सदा सादा, सात्विक और स्वच्छ हो। 'फकीर'

सुप्रसिद्ध अमेरिकन सज्जन एडिसन का कथन है कि यदि तुम केवल जिह्वा को वश में कर लो तो तुम्हारे मन व शरीर अनायास वश में हो जायेंगे।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्।

अर्थ--एकमात्र आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम मोक्ष का सर्वोत्तम मूल है। रोग इन चारों को नष्ट कर डालते हैं, यही नहीं किन्तु जीवन को अकाल ही में चिन्ता और चिता पर चढ़ा देते हैं।

अभिप्राय यह है कि रोगी शरीर से सांसारिक सुख तो मिलता ही नहीं, फिर बिना निरोग शरीर के आत्म ज्ञान, आत्म अनुभव, आत्म बल तथा मनोबल कैसे प्राप्त हो सकते हैं।

"Sound mind in a sound body"

यदि मनुष्य यह जान जाय कि सदा खुश रहने से तन्दुरुस्ती ठीक रहती है और सदा प्रसन्न रहे तो वैद्य और डाक्टरों के इलाज की आवश्यकता न रहे।

सत्संग प्रवचन

(परम संत दयाल फकीर साहब)

(सांगारेडी १७-२-६२)

मन की अकथ कहानी साधो । मन की अकथ कहानी ।।
मन में सुख दुख सभी भरे हैं मन है भव की खानी ।
मन ही पितृ और देवियान हैं, मन है पद निरवानी ।। साधो०।।
मन है दुखी रंक विपरीती, मन राजा मन रानी ।
मन योगी और मन सँसारी, मन ज्ञाता मन ज्ञानी । साधो ।
मनहि से उपजी सकल वासना, वर्म वचन अरु बानी ।
मन आकाश और पवन अगनि है, मन पृथ्वी मन पानी ।। साधो ।।
गगन चढे मन अधर विराजे लखै विचित्र निशानी ।
गिरै पताल समुन्दर डूबे, काम क्रोध मद सानी ।। साधो ।।
कर सत्संग साध की सेवा, ताकी गति पहिचानी ।
राधास्वामी गुरु की दया मेहर से, कछुक मरम हम जानी ।।
साधो ! मन की अकथ कहानी ।।

यह शब्द आपने सुन लिया । इसमे मन के विस्तार का वर्णन है । इसी को समझना है, इसी को जानना है और इसी को काबू में करना है । इसको जानने, समझने और काबू में करने के लिये ये जप, तप, साधना सत्संग आदि है । इसलिये इस मन की निरख परख करो । अमली जीवन से मन की गढत करो ताकि आगे का मार्ग सुगम होता चले और जीवन में शान्ति मिल सके । पहिले अपने घरों की दशा देखो । देवर भावी के झगडे, सास बहू की अनवन, भाई भाई में भेद भाव, आदि आदि ! फिर लोग कहें कि हम राधास्वामी मत के है केवल कथन मात्र है यह करनी का मार्ग है न कि बातों का । इसलिये आप को सरल सा नुसखा बताता हूँ ताकि जीवन की गढत हो जाय । यह है प्रेम का मार्ग घर में रहो । बच्चों से प्रेम करो । उनके लिये त्याग करो एक आदमी के पास दस हजार रुपया है और वह अपने नाम और यश को ९ हजार दान करता है मगर उसके भाई भतीजे भूखे हैं फिर बताओ उस दान से

क्या लाभ । बात सच्ची है । दाता दयाल कहा करते थे कि अपने घर को स्वर्ग बनाओं । त्याग करना यहाँ कठिन हैं । घर वालों की भली बुरी सुनकर यदि मन नही डोलता और तुम शान्ति रहते हो तो तुम साधुओं से हजार ही दर्जे बहतर हो । जब असली जीवन इस प्रकार का हो जाय तो जीवन आनन्द मय होगा । शान्ति रहेगी । यह असली जीवन का सबक है । दूसरे भी मेरे भाई हैं मैं उनके हित की बात कहता हूँ । मुझे मत का पक्ष नही । मैंने राधास्वामी मत से इंसानियत सीखी है । जीवन विताने का रहस्य सीखा है । इसलिये जीवन कैसे गुजारें ? 'शुभ संकल्प द्वारा, अर्थात तुम्हारे भाव विचार कर्म हितकारी, कल्याणकारी हों नाकि ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि भरे हुये । बात वही है मगर मेरी बर्णन शैली अलग है । तुम संध्या करते हो मंत्र पढते हो मगर बहतर मंत्र यह है कि — जो हमसे द्वेष करते हैं अथवा जिनसे हम द्वेष करते हैं उन दोनों के द्वेष भाव को ए मालिक ! जलादे । "जो केवल मन्त्र रटना जानते है अथवा राधास्वामी मत वाले राधास्वामी राधास्वामी करना जानते है क्या वह वास्तविक संध्या करते हैं या सच्चे उपासक हैं ? आप लोग दाता दयाल (महर्षि शिव) से प्रेम करते थे । मैं भी उनसे प्रेम करता था मगर मेरा प्रेम दाता दयाल के शरीर से सम्बन्धित नही था । जिन लोगों ने गुरु के स्वरूप को जाना वह धन्य है ।

दाता दयाल (महिष शिव) मुझे कह गये थे कि फकीर ! समय आयेगा जब मजहब नही रहेंगे । यह तालीम भी उपयोगी नही होगी मानव सन्तति भौतिकवादी हो जायगी । इसलिये तालीम को वदल जाना । मुझे उस समय समझ नहीं थी कि क्या करूँ । मैंने उनकी आज्ञानुसार शिक्षा शैली को बदला है मेरी शिक्षा है कि इन्सान बनो । हम सब एक हैं । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि के शब्द बुद्धि ने बनाये हैं । हम सब उसमें फॉसे हैं । तुम दाता दयाल की शिक्षा का प्रचार अपने आचरणों से करो । इसके लिये पुस्तकें सीखनी पडती है ! दुनियाँ आचरण को देखती है कि तुम कैसे हो । व्याख्यान या बचनों को नहीं । आचरण यह है जिसमें कोई परिश्रम नहीं । केवल दिल में

प्रेम करो। मीठी और हितकरी बात करो। ४२० न करो। तुम्हारे व्यापार में सचाई हो। भाईयों से प्रेम का व्यवहार हो। शास्त्र कहते हैं जो बडे हैं उनका आदर मान करो। क्षमा, करुणा, मुदिता, उदासीनता व्यवहार में लाओ छोटों की गलती को क्षमा करो। कौन गलती नही करता! दूसरों के ऐबों को प्रकट न करो। कहा है (For give and forget) अर्थात दूसरों के अपराध की क्षमा करदो और भूल जाओ।

करुणा—इसको क्रियात्मक रूप से इस तरह समझलो। दूसरों के दोषों को नजर अन्दाज करो। लडका नालायक है। उसका सुधार घृणा से नही कर सकते। घृणा से घृणा दूर नही हो सकती। वह केवल प्रेम से ही दूर हो सकती है। पुत्र वधू घर में आई। सास ननद आदि शाम तक डाँटती रहती हैं इसमें घरेलू शान्ति नहीं रह सकती। इसलिये करुणा के व्यवहार से सुख शान्ति मिल सकती है।

जहाँ सुमति वहाँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहाँ विपति निदाना॥

दूसरों की निन्दा न करो न उनके दोषों को देखो, न ईर्ष्या करो बनी लाख कोशिश करो कि सुमति हो जाय, कठिन है। राधास्वामी मत वाले जो यहाँ हैं तथा दूसरे धर्मावलम्बी अपने आचरण से इस बात को सिद्ध करें।

एक समय था कि जब कोई धनी मानी व्यक्ति गाँव में आता तो लोग कहा करते कि उन्होंने अच्छे कर्म किये जो धनी हैं। अब समय है कि अब धनी पुरुषों को यह कहा जाता है कि इसने गरीबों का खून चूसा हुआ है। यह पता नहीं कि हर एक अपना कर्म भोगता है जैसा जैसा कर्म वैसा वैसा फल

मुझे घरेलू कष्ट थे। पिताजी ने दाता दयाल को लिखा था कि चचा ताऊ आदि तंग करते हैं। उन्होने इसका उत्तर नीचे लिखे शब्द के रुप में दिया।

कोई नहीं सुख दुख का दाता, तेरी है भूल सब।
कर्म अपना करते है, अनुकूल और प्रतिकूल सब॥

कर्म की प्रधानता की क्या. नहीं है तुमको समझ।
कर्म से आनन्द है और, कर्म ही से सूल सब।
यह जगत है वाटिका, करते हैं प्राणी आके काम।
कर्म के अनुसार ईनके' काँटे हैं और फूल सब ॥
जो ठगेगा वह ठगा, जायगा निसहन्देह आप।
प्रेमी जन ही पाते हैं और प्रेम के बहुमूल सब ॥
अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब ॥
किस भरम में तू पडा, औरों की बात छोड दे।
काम में लग अपने करले, कर्म निज अनूकूल सब ॥
राधास्वामी नाम भज, झगडों से बचकर रह सदा।
जो नहीं समझा तो पढना, लिखना होगा सब धूल सब ॥

कष्ट सबको आते हैं। इसलिये गृहस्थ के जीवन में क्षमा, करुणा, मैत्र[त] उदासीनता से व्यवहार करना है। बडों को देखकर ईर्ष्या मत करो। अपने गृहस्थ व्यवहार को सुखमय व शान्तिमय वनाने के लिये अपने ही घर का उदाहरण देता हूँ। मेरे छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्रनाथ अच्छा वेतन पाते थे। उनके बच्चे मेरे पास थे। मुझे केवल ९५) रु० मिलते थे। खर्च चलाना कठिन हो रहा था। हालत तंग थी वह उन बच्चों के लिये खर्च नहीं भेजते थे। ६ बर्ष बाद मैंने उनको खर्च भेजने को लिखा। एक माह का खर्च भेजा। लिख दिया कि गुरुकुल में दाखिल करा दो। मुझे बुरा लगा। सख्त सुस्त लिख डाला। उन्होंने और सख्त लिखा। वह पत्र मैंने दाता दयाल को भेज दिया है यह दशा भाईयों की है। तुमको दाता दयाल की शिक्षा बता रहा हूँ। तुमको उन्होंने क्या बताया मुझे नहीं मालूम। उन्होंने मुझे लिखा — 'आपका फकीर खत मिला! फकीर भूल गया कि वह फकीर है। उसने फकीरी की कमाई की है। अपने अन्तर में अपने दोष नही देखता। फकीर आदर मान पर कै कर देते हैं और दुनियाँ के कुत्ते चाटते हैं। फिर मैंने कभी ऐसा पत्र नही लिखा।

वर्षों व्यतीत हो गये । मेरा हृदय शुद्ध हो गया । लाख कोई डींग मारे मगर घर गृहस्थी के भिन्न भिन्न विचार उठते रहते हैं । इस पर काबू पाना सुगम नहीं है । हाँ गुरू परायण होने पर अथवा गुरू आज्ञानुसार चलने पर यह सतासे नहीं हैं।

मुदिता—यदि कोई व्यक्ति धनी हैं सुखी है तो उसे देखकर डाह न करो जिन स्त्रियों के बच्चे नहीं होते वह बच्चे वाली स्त्रियों को डाह करती हैं यह गलती है ।

उदासीनता—कितने ही लोग अकारण शत्रुता करते हैं कितने ही उपद्रवी होते हैं। वह नारद ऋषि की तरह लडाते रहते हैं । उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार करो, उनकी संगत से बचो मिलना जुलना उनसे रखो जो सदव्यवहारी हों । यह संसार में रहने के गुरू हैं ।

(हमारी उत्पति प्रकाश से है इसकी व्याख्या अन्य सत्सगों में आ चुकी है इसलिये यहां नहीं दी जाती) हमारी उत्पति प्रकाश से है । हमारे अन्दर वह प्रकाश या ज्योति है जिसे कर्त्ता पुरुष, ज्योतिस्वरूप या ब्रह्म कहते हैं। मन की तरंगों तथा अहंकार से बचने को प्रकाश में आना चाहिये । ओ३म् भू भुवः स्वः की श्रेणियों से परे जो सावित्री रूपी प्रकाश है उसके दर्शन करो। मेरे तेरे पने से बचने का उपाय है प्रकाश का दर्शन । आत्मा ही प्रकाश है। यह ऋषि मत है । संत मत ने एक श्रेणी और आगे ली है । प्रकाश का काम फैलना हैं । आज प्रकाश रूप बन गया है । हो सक्ता है फिर दुनिया में आओ । अतः अनहद शब्द का साधन है । शब्द आकाश का गुण है । इसलिये सदा के लिये मुक्ति चाहते हो तो शब्द में लय हो जाओ । राधास्वामी मत में दो मार्ग है । निवृति मार्ग और प्रवृति मार्ग । चूंकि जीव अज्ञानी हैं उनकों समझ नहीं कि किस तरह से जीवन गुजारा जाय इसलिये जीने के भेद को सीखो । अपने भावों अथवा कष्टों को अपने गुरू को जो शब्द और प्रकाश मास्टर हो कहो । वह तुमको बतायेगा कि किस किस समय क्या क्या करना है। इसलिये वक्त गुरु की आवश्यकता है ।

यह प्रथा प्राचीन काल में थी। हर एक के कुल गुरू होते थे। भगवान के गुरू वशिष्ट थे। मेरे गुरू दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज थे। जो कष्ट या कठिनाई आती थी लिख देता था। मनुष्य अपना फैसला आप नहीं कर सकता। मेरे कहने का तात्पर्य यह हैं कि गुरु मत के विना गुजारा नहीं रोगी अपना इलाज आप नही कर सक्ता। डाक्टर के पास जाता है गुरु दुनियां में रहने काऔर उससे निकलने का तरीका बतलाता हैं। वाणी मे आया है। :—

लोक अलोक पाउं सुख धामा।
चरण शरण दीजे विश्रामा॥

इसलिये गुरु की महिमा है। हन्दू शास्त्रों और ऋषियों ने भी गुरु की महिमा गाई है। इसलिये गुरु परायण बनकर जीवन को सुखी बनाओ।

सबको शान्ति

सत्संग प्रवचन

(सिकन्दराबाद—१६-२-६२)

आवागमन

मुझे बचपन से आवागमन से बचने की इच्छा थी। मौज मुझे संत मत में ले गई। महा पुरुषों या महात्माओ के कथन में भिन्नता होने के कारण बात समझ में नहीं आती थी। हिन्दू, जैन, बुद्ध मानते हैं कि आवागमन है। इस आवागमन से बचाव के लिये कोई दान करता है। कोई तीर्थ यात्रा, कोई व्रत, कोई योग, संध्या आदि करता है। मैंने भी अनेक उपाय किये मगर जीवन का अनुभव किसी दूसरी ओर ले गया और इस नतीजे पर आया कि जितने दृश्य-शिव विष्णु देवी देवता गुरु आदि के साधक, भक्त या अभ्यासी के अंतर में प्रगट होते है अथवा लब तक प्रगट होते रहते हैं, तब तक उसने अपने को उनके साथ बाँधा हुआ है। वह आवागमन से निकल नहीं सकता।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान बिना मुक्ति नहीं। मुझे शास्त्रकारों का पता नहीं कि उनका ज्ञान, भक्ति, योग, जप से क्या अभिप्राय है। सन्तों के मार्ग

में गुरु है पूर्ण पुरुष की सगत करो तब भेद खुलेगा मगर क्या कहा जाय कि किसी को इच्छा नहीं। गिने चुने लोग है जो आवागमन से बचने की असलियत देखना चाहते हैं। आवागमन न तो योग से मिट सकता है न दान से पुण्य से न तीर्थ से और न मन्दिरों में जाने से। ये सब कर्म हमारे लिये सुख दायक हैं। इस जीव और अगले जीवन में सहायक हैं मगर वास्तविकता यह है कि आवागमन समाप्त नहीं होता। यही बात राधास्वामी दयाल कह गये:—

देखो गगन के बीच श्याम, कंज खिल रहा।
भवरा यथा लुभाय, वहीं चढ के मिल रहा॥
धोके का वह मुकाम, उसे देखता रहा।
बहु सिद्ध नाथ जोगी, इन्हें पेखता रहा॥
काल अपना जाल एक, जुदाई बिछा रहा।
जो जो गये वहां, उन्हें उलटा बता रहा॥
नाना कला दिखाय, वही मोहता रहा।
सबकी कमाई आप, खड़ा खोसता रहा॥
क्या क्या कहूँ अनर्थ बहु भांति कर रहा।
बिन सन्त सतगुरु वह सभी को निगल रहा॥
आगे न कोई जाय, इसी में भुला रहा।
माया का झूला डाल, मुनिन को झुला रहा॥
द्वारे के पार काहु को, जाने न दे रहा।
फिर भेद वहां के पार का, सब ही ढका रहा॥
क्या शेष क्या महेश, सभी हार कर रहा।
बिन सन्त उसके पार, कोई भी न जा रहा॥
सो भेद राधास्वामी, सभी को सुना रहा।
जिस पर महर है उनकी, वह परतीत ला रहा॥

यह गगन और श्याम कंज क्या है? गगन हमारा दिमाग है और श्याम कंज हमारा मन है। जितने योगी, भक्त, उपासक, अभ्यासी हैं ये अन्तर में

ध्यान लगाते हैं। किसी ने राम का किसी ने कृष्ण का, किसी ने खुदा का किसी ने प्रकाश का या किसी अन्य का ध्यान किया। उसमें तरह तरह के दृश्य दिखाई देते है। लोग उन रूपों को सत मान कर और उनके साथ लग कर आनन्द लेते हैं मगर अपलियत क्या है? जिस तरह मेरा ध्यान करने वालों में मेरा रूप प्रगट होता है मगर मैं किसी के अन्दर नहीं आता, इसी रह बाहर से राम, कृष्ण आदि कोई नहीं आता। मैंने पिछले सत्संग में गनेशचन्द्र एक सत्संगी (मध्य भारत वासी) का जिक्र किया है। उसने १०-१२ दिन मौन रक्खा। उसने लिखा कि उसने अभ्यास में हिमालय सा सूर्य देखा। उसमें से प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। देवताओं के दल के दल निकल रहे है। उस दल को चीरता हुआ मैं (फकीर) उसके पास आ गया। मैंने कहा कि यह है सावित्री जो सृष्टि की रचना करता है। मैं उसको प्रकाश के अन्दर लेगया। उसका शरीर सुन्न था अब मैं तो वहां गया नही, फिर कौन गया? मनुष्य के मस्तिष्क पर जिस तरह के ख्याल, भाव, विचार, धारणायें पड़ी हैं वह जब ध्यान में जाता हैं तो वही भाव विचार या संस्कार रूप धारण करके प्रगट होते हैं। जीव उनको सत मानकर लुभायमान हो रहा है। जिनके मन निर्मल तथा शुद्ध है उनमें महापुरुष या देवता प्रगट होते है और जिनके मन गंदे या दुराचारी है उनमें डरावनी भयावनी डाकिनी शाकिनियों के रूप प्रगट होते है। जो मनुष्य सारे जीवन इन दृश्यों को सत समझ कर इनके पीछे लगा रहता है वह इनकी कल्पना से निकल नही सकता। सन्तों का कथनहै :—

१. गुरु खजोरी, जग में दुर्लभ रतन यही।

२. गुरु तो पूरा ढूँढरी,

पूरे गुरु का अर्थ है पूर्ण ज्ञान, पूरी समझ, तथा पूर्ण अनुभव। दूसरे शब्दों में यों कहो कि पूर्ण पुरुष या सत पुरुष की खोज करो ताकि वह तुम्हें भेद पर राज बतादे। मैं गुरु नहीं हूँ। कबीर तथा राधास्वामी दयाल की शिक्षा का प्रचारक हूँ। मेरे जिम्मे जगत कल्याण की ड्यूटी लगाई हुई है कि जीवों का

कल्लाण हो । उनको मुक्ति मिले अथवा आवागमन से छुटकारा मिले और निज स्वरुप में प्रवेश पा जाँय । विवश हूं कि सचाई को वर्णन कर जाऊँ क्योकि कल और माया इसको रोकती हैं सुरत को ऊपर ऊँचे स्थानो या लोकोमें) नही जाने देती

लोगों को गुरूमत की समझ नहीं हैं । अज्ञान छाया हुआ हैं । कहते हैं कि गुरू मर गया । चेला कहता है कि उसकी धार अमुक में आ-गई । मैं ऐसा नहीं मानता । जग में घोर अंधेरा भारी, तन में तन का भंडारा । गुरु इज्म की गलत समझ ने दुनियाँ को दीवाना बनाया हुआ है । दाता दयाल (महर्षिजित्र) ने चोला छोड़ने से पहिले एक खत मुझे लिखा था । रात को नींद नहीं आई । अब समझले बूढा हुआ तेरा पीर ।।

स्वप्न में किसी ने कहा दाता का चोला छूट गया । सात मील लम्बा प्रकाश ऊपर आया । मेरी खोपड़ी में समा गया अब यह कहना कि उनकी धार मुझमें आई गलत है । वास्तव में वह मेरा ही प्रकाश था और मेरे अंदर वापिस आगया । जब दुर्गादास (चंडीगढ) की स्त्री का देहान्त हुआ, उस समय वाणी का पाठ हो रहा था । उसकी दृष्टि दाता दयाल की फोटो पर थी । जैसे ही समय आया, ख्याल पलटा और सूरत ऊपर गई, फोटो गिर गई ।

यह मन महा शक्तिशाली है । लोग बहुत से मेरा रूप बना लेते हैं और उससे काम ले लेते हैं यह सब अपने ख्याल का खेल है ।

यदि स्वामी जी की वाणी में मुझे सचाई प्रतीत न होती तो मैं उसका खंडन कर जाता । मैंने तपस्या की है साधन किया है । जिसको कोई वस्तु मुफ्त मिल जाती है वह मुफ्ती रहते हैं पुरुषार्थी नहीं बनते । मेरा अनुभव इस बात को सच मानता है कि जितने योगी, या मानसिक ध्यान करने वाले हैं उनको सिद्धी मिल जायेगी । इच्छा शकित बढने से सफलता मिलेगी, आनन्द मिलेगा मगर आवागवन नहीं जा सकता आवागवन से बचने का दूसरा मार्ग है । त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, सोहं पद में पहुंचा आदमी आवागवन से नहीं बच सकता । ये श्रेणियां तुम्हारे अपने मन की हैं ।

इस पर यह शंका की जा सकती है जब कि यह सब मन की कल्पना हैं मन के दर्जे हैं तो फिर हम ध्यान और सुमिरन किसका करें ?

जिन्होंने फकीर' (मुझे) को मस्तराम का पुत्र माना तो यह समझा कि 'फकीर' होशियारपुर वासी है। प्रारम्भ में तो ध्यान और सुमिरन आवश्यक है मगर यह इष्ट नही हैं। ध्यान जो तुम फकीर का या किसी गुरु रूप का करते हो उस रूप को यह मानो कि इष्ट या आदर्श का रूप है। उसका सगुन रूप बना लिया गया है क्योंकि गुरु नाम है इष्ट का आदर्श का, कहा है—

गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध।
दुखी होंय संसार में, आगे यम का फंद ॥
गुरु किया है देह को सतगुरु चीन्हा नाहि।
भव सागर की धार में, फिर-२ गोता खाहिं।

फिर गुरु कौन ! वह अब तो साकार रूप में हैं। चूंकि मन की गढत को अथवा मन को ठहराने को ऐसा करना पड़ता है मगर उसे यह मानो कि वह परम तत्व आधार का रूप है। इससे ध्यान शक्ति बढ जायगी। फिर जैसी आसा वैसी वासा। जो चाहोगे वह होता रहेगा। यही वामना आगे के स्थानों में या अवस्थाओं में ले जायेगी और यही संसारिक कार्यों में उन्नति करेगी। मगर याद रहे कि सत्संग नहीं मिला और मन की इच्छायें या वासनायें गन्दी या मलिन रही और ध्यान करते रहे तो वे बजाय लाभ के हानिकारक सिद्ध होंगी इसलिये कहा गया है:—

गुरु बिन घट में राह न चलना।

अर्थात किसी बाहरी पूर्ण गुरु की देख रेख के बिना अंतरीय साधन नहीं करना चाहिये। कारण कि ध्यान से इच्छा शक्ति बढ जाती है फिर जो कुछ उल्टा सीधा, गलत सही अभ्यासी सोचता रहता है और हानि उठाता है। (इस विषय पर कई उदाहरण दिये गये जो पिछले सत्संगों में वर्णन किये जा चुके हैं इसलिये यहाँ नहीं दिये जाते हैं)

संतों का अवतार होता रहता है। मगर कितने हैं जो उस ज्ञान या समझ को प्राप्त करना चाहते हैं अथवा आवागमन बचना चाहते हैं। जनसाधारण ज़र जन और जमीन से आसक्ति जोड़े हुये हैं। कारण है कि ऋषियों ने मानव जीवन के लिये चार आश्रम बनाये— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ और संन्यास।

हम बूढ़े होने को आये मगर दिलों से बेटा, नाती, पोते धन-सम्पति की ममता नहीं निकलती। समय बदल गया। किसी किसी शुभ काम वाले के हिस्से में यह अवस्था आती है।

(नन्दू भाई जी की ओर संकेत करते हुये कहा कि गुरु रूप को छोड कर निज रूप में रहो। यह न समझो कि मैं पथ भ्रष्ट हो गया कि गुरु को नहीं मानता। इसके लिए स्वामी जी की वाणी 'सार वचन' में जेठ मास के बारह मासा का अध्ययन किया जा सकता है जहाँ इस अवस्था का वर्णन है।)

जो जिस अवस्था का बासी है, उसके अन्दर से वैसी ही रेडियेशन निकलती रहती है। साइंस ने यह मान लिया है कि शरीर एक रेडियो स्टेशन है। जीव-जन्तु कोई भी हो, सब के अन्दर से रेडियेशन निकलती रहती है। जहं जहाँ अधिकारी होता है, अर्थात उसके रेडियेशन के लेने वाला होता है, वहां वहाँ रेडियेशन पहुँचती रहती है। पुलिस के पास आजकल ऐसे कुत्ते हैं कि उन्हें अपराधी की वस्तु सुंघा देते हैं फिर वह कुत्ता उसकी रेडियेशन को सूंघता चलता है और जहाँ वह मिलता है पकड़ लेता है। संत जहां जाता जाता है उसकी रेडियेशन बहाँ वहाँ जाती है।

सत्संग जहाँ मिले वहाँ करो। सत्संग कराने वाला जिस किसी अवस्था का साधक हो, उससे लाभ पहुंचेगा। यदि वह पेट के साधन को अथवा डेरा धाम के लिए सत्संग कराता है। तो लाभ नहीं होगा। स्वामी जी ने कोई धाम नहीं बनाया न कबीर ने कोई आश्रम खोला। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं इनके विरुद्ध हूँ। नीयत शुद्ध होनी चाहिए अर्थात नीयत में कोई स्वार्थ न हो। (नन्दू भाई जी की ओर संकेत करके कहा कि गुरु मुख की हैसियत को त्यागो, मगर कोई सूरमा ही त्याग सकता है जिसे मुक्ति तक की भी इच्छा

न हो। संत सतगुरु करोड़ों में कोई एक होता है।

मैं शब्द और प्रकाश के मंडल में आता रहता हूँ। वहाँ शब्द सुनता रहता हूँ। वहाँ मन काम नहीं करता मगर मेरी चेतन्यता तो रहती है। अब सैरी आ जाती है तो मेरी चेतन्यता समाप्त। उस अवस्था का वर्णन इस बाणी (सार बचन) में है।

राधास्वामी मत और हिन्दू धर्म में कोई अन्तर नहीं। हिन्दू धर्म कहता है कि सत को अमत ने ढक रक्खा था। सत है अनाम गति और अमत है शब्द और प्रकाश। यह संतों का कथन है अर्थात शब्द और प्रकाश के परे वह अवस्था है जहाँ 'रूप न रंग न रेखा री'

मत कोई गलत नहीं। उसके भाव को समझो। हर एक जीव जैसे तुम वैसा वह या जैसा मैं, जैसा भी सिक्ख वैसा ही अन्य धर्मावलम्बी।

जहाँ आदि है अर्थात आदि अवस्था है वहाँ बुद्धि नहीं, हम नहीं रहे अतः जीवन में रहते हुए सत्संग करके जीवन मुक्त अवस्था में रहो मगर मन चंचल है इस अवस्था में रह नहीं सकते। अतः सुमिरन ध्यान को मत छोड़ो। इससे इच्छा शक्ति बढ़ती रहेगी। आपको भेद बता दिया। असलियत का वर्णन कर दिया। ज्ञान होने पर अथवा अनुभव होने पर आवागमन समाप्त होता है।

मैं कौन हूँ ? मुझे यह ज्ञान या अनुभव हो गया कि मैं सुरत हूं और उस परम तत्व का अंश हूँ। इस बात को दाता दयाल (महर्षि शिव) ने स्पष्ट रूप से निम्नलिखित शब्द में वर्णन किया है—

मैं ना मैं ना रे मैं ना ।।
मैंना तन पिंजरे में रहकर, बोली बोले रे मैंना ।।
जब तक मैं है तब तक तू है, मोर तोर का झगड़ा।
मैं जब गया गया तब तू भी, अब किसका है रगड़ा।
सत गुरु दीनी सैना ।।
जो तू कहता वह अन्धा है, 'मैं' कहता दीवाना।
मैं मैं तू तू को जब छोड़े, वही है चतुर सयाना।

।। मनुष्य बनो ।।

वह है सच्ची चैना ।।

जब मैं तब गुरु नहीं है, जब गुरु मैं नाहीं ।
प्रेम की गली अति तंग है भाई, दोनों कैसे समाई ।।
दोनों रहते हैं ना ।।
मोर तोर काया की रसरी. प्राणी फाँस फँसाने ।
तोड़ के रसरी हो गये न्यारे, फिर नहीं वह भरमाने ।।
हो गये सच्चे मैना ।।
बकरी मैं कह गला कटावै, मैं मैं कह मिमियावे ।
में ना मैं ना वचन सुनावे, बेसन शक्कर खावे ।।
कैसी मीठी मैन ।।

मैं ना मैं ना मैना बोले, बोल के रटन जगावे ।
मैं को त्याग शान्त बन जावे, सुख आनन्द धन पावे ।।
पावै नित ही चैना ।।

मैं तू भरम विकार है मन का, मन माया का साथी ।
जो 'मैं' कहेगा दुख से मरेगा, गह के अहं का हाथी ।।
मैं तू दोनों हैं ना ।।

सुरत की पंछी मैंना बनकर, मैं ना मैं ना कहती ।
सुन्न वृक्ष की डाल पर बैठी, दुखसुख अब नहीं सहती ।।
दिन है जहाँ न रैना ।।
मैं ना मैं ना तू ना तूना, यह सतगुरु की वाणी ।
वाणी सुन सुन जो चितलावे, बने सहज निरवाणी ।।
माया फिर कभी व्यापेना ।।
राधा स्वामी शब्द सुरत की, धुन गा गा के सुनावे ।
जो गावे नित गाके सुनावे, फिर पिंजरे नहिं आवे ।।
वह बन जावे मैंना ।।

अतः साधन और सत्संग करते रहो । सत्संग दो प्रकार का है—

(१) गद्य या प्रवचन द्वारा (२) संतों की वाणी (पद्य) का पाठ। वाणी के पाठ द्वारा जब सत्संग किया जाय तो सुर में हो और श्रोता सहस दल कंवल पर ध्यान जमावें। जैसे जैसे भाव आवें वैसे वैसे ऊपर चलें। इस प्रकार के पाठ से अभ्यास में बहुत सहायता मिलेगी।

पाठ जो हों वह संतों की वाणी का हो जैसे स्वामी जी महाराज, दातू दयाल (महर्षि शिव) कबीर साहिब आदि की वाणी।

गद्य या प्रवचन द्वारा सत्संग शंका और भ्रम दूर करने को होता है। मैं शका और भ्रमों को दूर करने को सत्संग कराता हूं। इससे बुद्धि निश्चयात्मक हो जाती है। हाँ यह आवश्यक है कि श्रोता एक समय में एक ही ख्याल के हो जाँय।

सत्संग कराने वाले का रेडियेशन जीवन को बदल देगा। मगर कब ? जब सत्संग करने वाले इस बात के अभिलाषी भी हों। यदि यों ही मन बहलाने के लिए आ जाँय तो पूरा लाभ नहीं हो सकता।

हम ग्रहस्थी हैं। जीवन की जरूरतों से बरी नहीं हो सकते। राधास्वामी मत की शिक्षा के अनुसार चला जाय तो हम निर्धन नही हो सकते। राधास्वामी मत सिखाता है कि चित्त वृत्ति को एकाग्र करो। एकाग्रता से इच्छाशक्ति बढ़ेगी और जैसी जैसी इच्छा करोगे वैसा वैसा होता रहेगा। आज के गुरु सिखाते हैं वैराग। माँ बाप भाई कोई अपना नहीं। मगर कोई इनसे पूछे तो सही कि तुम आप तो मठ बनाकर बैठते हो दूसरों को त्याग वैराग की शिक्षा क्यों देते हो ? तुम सदा शुभ संकल्प रखो। विचारों में कटुता, ईर्ष्या द्वेष, घृणा न आने पाये। सबका भला चाहो। इसमें तुम्हारा कुटुम्ब, परिवार सन्तान, सम्बन्धी आदि सब आ जाते हैं। इस प्रकार जीवन को क्रियात्मक साँचे में ढालो और तुम्हारा जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो जायेगा।

सबको शान्ति !

प्रवचन

(इन्दौर—२६-२-६२ सायं)

कर्म फल

मैंने कर्मभोगवश या मौज आधीन गुप्त रहस्य को प्रकट कर दिया है। कोई बात मैंने अनुभव की है छिपाई नहीं जिसको महात्मा लोग गुप्त रखते हैं, यद्यपि उसे खोलना नहीं चाहिए था क्योंकि फिर उसमें आकर्षण नहीं रहता। कई महात्मा उसे खोलने के लिए सहमत नहीं होते। जिस भाव से वे ऐसा कहते हैं मैं सहमत हूँ। मैं यहाँ लीलावती (पुत्री सेठ मोतीलाल इन्दौर) के यहाँ आया। उसकी लड़की को देखा। (वह अपाहिज थी और बोलने चलने आदि में बिल्कुल असमर्थ थी) दुखी थी। सवाल होता है ऐसा क्यों है ? या तो दुनियाँ का रचने वाला निर्दयी है या जीवों के अपने कर्म हैं। मेरी पहिली स्त्री ७॥ वर्ष बीमार रही और चल बसी। अब दूसरी भी ५ वर्ष से बीमार है। इसी प्रकार सारी दुनियाँ दुखी है। यह हमारे कर्मों का फल है और हम प्रालब्ध कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। अगर मैं संत मत के रहस्य को पर्दे में रखता हूँ या छिपाता हूं तो मैं संसार वालों से यह सवाल करता हूँ कि क्या यह मैंने पाप नहीं किया ? क्या मुझे इस कर्म का फल नहीं मिलेगा ? साधारणतया जो लोग राधास्वामी मत के नहीं है वह सहमत हो जाते हैं मगर सचाई के प्रगट करने में राधास्वामी मत वाले विरोध करते हैं।

मगर मैं क्या करूँ ! मेरे जिम्मे दाता दयाल (महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज) ने ड्यूटी लगाई हुई है—

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।
दुखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरु के देशा॥
तीन ताप से जीव दुखी है, निकल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

इसलिए रहस्य को प्रकट करने के लिए विवश हूँ।

यह जो बात मैंने अब तक कही है वह ऐडीटर 'शिव' (श्री देवीचरन जो यहाँ पर हैं) के सवाल का जवाब है। जो गद्दियों के मालिक हैं अथवा जो हलुआ पूड़ी के पीछे लगे हैं, वह सहमत होने को तैयार नहीं। यह सम्भव नहीं कि कोई सच्चा पुरुष या फकीर झूठी मान बड़ाई के लिए बात को पर्दे में रक्खे। अब नहीं तो अगले जन्म में सजा मिलेगी।

कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा॥

मैं अपने चेलों को बदनाम करने नहीं आया। दाता दयाल ज्ञानवान रुष थे। वे कहा करते थे :—

नर भोगे बारम्बार अवश्य फल कर्म किये का॥
(यह पूरा शब्द पहिले भाग में आ चुका है)

मुझको यह शिक्षा दी गई थी। यह शब्द उस समय दाता दयाल (महर्षि शिव ने लिखा था और मुझे सुनाया था जब मैं सन् १९२१ में आर्ती करने गया था। मुझसे मेरे गुरु भाई या राधा स्वामी मत वाले कैसे आशा कर सकते हैं कि मैं हेर फेर कर बात कहूंगा। मैं फकीर हूं। मैंने अपनी ड्यूटी बता दी। फकीर के लक्षण क्या हैं सुनो :—

तू फकीर है मेरे प्यारे सुन फकीर की बानी।
साधू कहें फकीर को भाई, साधू जग सुख दानी॥
(यह पूरा शब्द पहिले भाग में आ चुका है इसलिए उसमें या 'फकीर भजनावली में देखिये)

मेरे नाम यह आज्ञा है। अगले गलत मान को चार दिन के जीवन में कोई अनुचित काम क्यों करूँ ?

ऐ सेठ मोतीलाल ! पुत्री लीलावती ! तुम्हारे कल्याण को भाषण दे रहा हूँ। सोचो विचारो और जीवन को अमली साँचे में ढालो। अज्ञान की भक्ति से शिष्य की भी हानि है। अपने जीवन और अपने हालात को देखो। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि से अपने को बचाओ। मुझको ऐसी ही शिक्षा दी

हूँ। मैंने अपने गुरु भाइयों के कटाक्ष का उत्तर दे दिया। इस स्पष्ट वर्णन से आडम्बर नहीं बनता। लोग अधिक पीछे नहीं फिरते।

नरनारी बहुतक बस कीने, भोले भगतन धोक दियारी।

जो इस रहस्य को हृदय में रखकर अर्थात गुप्त रखकर लोगों को पीछे लगाते हैं उनसे सवाल है कि वे सच कहें कि वे कहाँ तक राधा स्वामी या संत मत के अनुयायी हैं। अभी दुनियाँ मेरी बात को नहीं सुनती। समय आयेगा जब सुनना पड़ेगा।

गुरु किसे कहते हैं? गुरु नाम है ज्ञान का, अनुभव का, विवेक का। वाणी हैं—

गुरु मैं गुनहगार अति भारी।
काम क्रोध अरु छल चतुराई, इन संग है मेरी यारी।
लोभ मोह अहंकार ईर्ष्या, मान बड़ाई धारी ।।
कपटी लम्पट झूठा हिंसक, अस अस पाप कटारी ।।
दुक्ख निरादर सहा न जाई, सुख आदर अभिशाप भरारी ।।
बिजन स्वाद अधिक रस चाहे, मन रसना यही चाट पड़ारी ।।
धन और कामिनि चित्त बसाये, पुत्र कलत्तर आस भरारी ।।
जब जब चोट पड़ी दुक्खन की, तब डर डर कर भजन करारी ।।
शेखी बहुत प्रीत नहीं अन्तर, भोले भक्तन धोक दियारी ।।
नरनारी बहुतक बस कीन्हे, मान प्रतिष्ठा भोग कियारी ।।
कहं लग अवगुन बरनूँ, अपने याद न आवत भूल गयारी ।।
खुद मतलबी निर्दयी मानी, बहुतन का अपमान कियारी ।।
कोटिन पाप किये बहुतेरे कहूँ कहाँ लग वार न पारी ।।
जतन करूँ तो बन नहिं आवत हार हार अब सरन पड़ारी ।।
यह भी बात कही मैं मुख से, बन से सरना कठिन भयारी ।।

यह शब्द आपने सुन लिया। सोचो कि गुरु कौन हैं? वह जिसमें कोई ऐसा दोष न हो। जो भी जीव संसार में है क्या अपने को इससे बरी

नाम है ? गुरु इष्ट है आदर्श है आधार है। जितने सत्संगी गुरु को मनुष्य समेझकर पूजा करते है वह तर नहीं सकेंगे। यह मेरा अनुभव है। मध्य भारत में एक गनेश नामी सत्संगी हैं, मैं उसे नहीं जानता। कहीं उसने नाम लिया होगा, मेरा ध्यान किया होगा। वह कहता है कि मैंने अभ्यास में हिमालय जैसा सूर्य देखा। प्रकाश पैदा हुआ उसमें से किरणों के दल के दल देखे। आप दल को चीरते हुए बाहर आये। मैंने उसे कहा कि यह है सावित्री जो रचना करता है तथा और भी बातें कहीं।

मोतीलाल के यहाँ स्त्री गुतर गई। मरते समय कहने लगीं फकीर बाबा पालकी लेकर आये हैं। राधास्वामी राधास्वामी कहो। राम राम न अहो। मगर मुझे कोई षता इन बातों का नहीं। फिर वह कौन गुरु है ? वह अंदर है। घट घट में है। वह आशा है विश्वास है। यदि विश्वास है तो उद्धार हो जायगा। यदि मैं धाम आदि बनाने को लोगों से रुपया लूटता हूँ और उसमें आसक्ति रखता हूँ तो मैं गुरु कहाँ रहा। गुरु बनके क्या कर चला या क्या ले चला।

यह जवाब दे रहा हूँ देवीचरन को जिसने मुझसे सवाल किया था मुरशीलाल को बाजू दिया अज्ञान मिटाने को न कि धारबरदारी का जानवर बनाने को। जो सत्संगी वाणी को सुनेंगे और गुनेंगे वह काल और माया के चक्र से निकल सकेंगे।

सत्संग में क्या करना चाहिए। बात को समझना। जीव निबल अबल अज्ञानी है बात समझ में बैठती नहीं। सहारा चाहते हैं। बच्चा अज्ञानी है उसको कोई हता नही है, अज्ञान को बात करता है। माँ से लिपटता है। म उसे सहारा देती है। इन अज्ञानियों को रहस्य का पता नहीं। बचहन क बुद्धि के अनुसार कोई मूर्ति को, कोई पीर को, कोई गुरु को पूजता है। वह विवश है। उसे पूजना चाहिए। दक्षिण भारत में भक्ति भाव अधिक है। वह लोग केला और हार चढ़ाते हैं। मैं उनके हारों को पहिनते और उतारते उता रते थक गया। जिनकी मनोवृत्ति ऐसी है उनको शान्ति देने को मूर्ति है अज्ञान का आवेश परा हो जाय। कितने ही सत्संगी भोले होते हैं। वह

को सुनकर विवश हैं कि जिस गुरु से सहारा मिले उसकी पूजा करें। बहुत सी स्त्रियाँ मेरी जेट भर लेती हैं, उनका दोष नहीं उनकी बुद्धि ऐसी ही है। इस लिए हमें इन्तजार करना पड़ता है कि बच्चा बालिग हो जाय, अर्थात इनमें समझ बूझ आ जाय। लोग साधु महात्मा बनकर स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करते हैं। स्त्रियों को रहस्य का पता नहीं, वे उनके पास जाती हैं कि उनकी मनोकामना पूरी हो जाय। मेरा कर्तव्य है कि इस तालीम को बदल जाऊँ। स्त्रियों का गुरु स्त्री हो। मेरे सामने कई उदाहरण इन कथित महात्माओं के हैं जिनको सुनकर हृदय टूक टूक हो जाता है। थोड़ा ही समय हुआ कि होशियारपुर में मेरे पास एक स्त्री पुरुष आये, मेरे पूछने पर बताया कि वे सत्संगी हैं और स्त्री को भूत आता है, दुखी हैं। मैं प्रकृति के नियमों का ज्ञाता हूँ। संत उसी तरह अन्तर्यामी होते हैं जैसे डाक्टर अंतर का हाल जानता है। संत मन आत्मा और साइक्लौजी (मनोविज्ञान) को अच्छी तरह जानते हैं। मैं समझ गया कि बात क्या है। मैंने कहा कि झूठ न बोलना, सच बताओ कि नपुंसक हो। पुरुष ने स्वीकार किया। उसकी स्त्री से कहा कि सच सच बता कि तू भी सत्संग में जाती है। उसने इसे स्वीकार किया। क्या उस साधु ने तेरा सतीत्व नहीं बिगाड़ा ? स्त्री भौचक्की रह गई। मैंने उसके पति से कहा कि इस पर भूत नहीं है। इसने अपने जीवन में पहिले कभी वह रस नहीं लिया था, अब इसको रस मिला, वही बात रूप धर धर कर सामने आती है। हजारों ऐसी घटनायें हैं इसलिए अपनी बहिन बेटियों को इस जाल से बचाने को स्त्रियों का गुरु स्त्री नियत किये जा रहा हूँ। इसी दृष्टि से इस क्षेत्र में सुश्री लीलावती को आचार्य बना रहा हूँ।

मैं चाहूँ तो गनेश जैसे से जितना चाहूँ धन लूट लूँ। उज्जैन का बैठ है उसको डेढ़ लाख का फायदा हो गया, वह समझता है कि मैंने किया। यदि मैं ही करने वाला होता तो स्वयं लखपति बन जाता। जो बात होने वाली होती है उसका नक्शा सामने आता रहता है, या विश्वास फल लाता है। मीरा बाई का विश्वास था कि ठाकुर (भगवान) का प्रशाद अमृत होता है ! उसने विष को ठाकुर का प्रशाद समझा। वह अमृत का फल लाया।

यद्यपि सेवा और पूजा लाजिमी हैं। सगुन उपासना में माता की उपासना करने वाला मन को ठीक कर सकता है। पिता की सेवा से मन निर्मल हो सकता है। देश का सच्चा भक्त तथा दुखियों को धन देने वाला भी मन को निर्मल कर सकता है।

हजूर बाबा सांवलेशाह (बाबा सावन सिंह व्यास वाले) कहा करते थे कि दसवें द्वार से आगे गुरु मिलता है। सबको दसवें द्वार से जाना पडता है। दसवां वह अवस्था है जहां मन अमन द्वार तथा निर्मल होता है। इसके लिये सबको एक ही रास्ता नहीं है। प्रकृति और परिस्थितियों के अनुसार किसी को भक्ति योग है किसी को ज्ञान, किसी को सेवा, दान, उपकार आदि आदि। पहिली सीढ़ी गुरुभक्ति है। जब तक गुरु सेवा न की जाय, कुछ नहीं मिल सकेगा। वह गुरु भक्ति क्या है ? जो गुरु कहें उसे तन से मन से से दत्त चित्त होकर करो।

"गुरु जो कहें सो हितकर मान।"

कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग मन को निर्मल करना चाहाते हैं या अपना कल्याण चाहते है वह गुरु मत में आवें। गुरु मत क्या है ? जीवन व्यतीत करने का राज है रहस्य है। यद्यपि ईश्वर की सत्ता सब में है मगर ईश्वर जब सहायता करेगा गूरु रुप में करेगा।

तुम्हारे वीर्य्य और स्त्री के रज से १०-१२ बच्चे हुये। फिर उनके इसी तरह बच्चे हुये। यद्यपि तुम्हारी सत्ता सबमें है परन्तु क्या तुम अपनी सत्ता से उनका जीवन बदल सकते हो ?

वह परम तत्व सबका आधार है। उसकी सत्ता से उसी प्रकार संसार बना जैसे तुम्हारी सत्ता से तुम्हारे बच्चे बने। वही सत्ता काम करती है मगर राय कौन देगा ? सत्ता नहीं दे सकती। जब परमतत्व सलाह या राय देगा रुप धारण करेगा। वह दयाल बनकर आयेगा और नसीहत कर जायगा। जो मानेगा उसका बेडा पार हो जायगा।

संसार में यदि कल्याण हो सकता है तो गुरु रुप द्वारा हो सकताहै

अज्ञान की भक्ति का परिणाम नहीं के बराबर होता है। ४०-४० साल सत्संगियों को इस पंथ में आये होगये मगर शान्ति नही मिली। शान्ति तब मिलती है जब मन को शुद्ध पवित्र किया जाता है। कहा है:—

दिल का हुजरा साफ कर जानां के आने के लिये।

सत्संग और साधन का असली लाभ तब मिलता है जब दिल साफ हो! यह कैसे साफ किया जाय? इसके लिये मैं यहाँ इतना बता देता हूँ कि जब जब गंदे, बुरे, हानिकारक, विचार हृदय में आवें उस समय गुरु को अंग संग समझो - गुरु के अंग संग समझने मानने और अनुभव कर लेने से मन की गंदगी धुल जायेगी। गुरु बाहर नहीं रहता। होशियारपुर ब्यास या आगरा या अन्य स्थान पर नहीं है। इस पर दाता दयाल महर्षि जी महाराज का एक शब्द है:—

ढूँढ मुझको अपने मन में, मैं तो तेरे पास हूं।
मैं न काशी हूं न मथुरा, मैं न गिर कैलाश हूँ॥
तू हुआ मेरा तो मैं भी, देख तेरा बन गया।
कर भरोसा मेरा मैं ही, तेरी सच्ची आस हूँ॥
तेरे भीतर मेरी बैठक, आंख से ले देख अब।
मैं नहीं पृथ्वी की मूरत, मैं नहीं आकाश हूँ॥
किस भरम में है पड़ा, निरभ्रान्त चित से शान्त हो।
आप मैं हूँ योग युक्ती, आप शब्द अभ्यास हूँ॥
राधास्वामी नाम ले, और नाम मैं विश्राम ले।
सुख ले और आनन्द मुझसे, मैं ही सुख की रास हूँ॥

हाँ, इतना अवश्य है कि जब तक सगुण रूप उपासना न की जायेगी निचली श्रेणियों से आगे नहीं की जा सकते। या यों कहो कि मूर्ति पूजा के बिना आगे की श्रेणियों में जाना साधारण रूप से सम्भव नहीं हैं। विशेष विशेष पुरुषों की बात को छोड दीजिये।

गुरु क्या करते हैं ? सीधा मार्ग जीवन व्यतीत करने का बताते हैं। सचाई बयान करते है। कोई बात हेर फेर नही कहते। जिनका अंतर और तथा बाहर और, मैं उन्हे गुरु कहने को तत्पर नहीं। दुनिया मुझे अंहकारी कहे। चाहता हूँकि अहंकारी कहें ताकि मेरे पास न आये। मैं वक्त गुरु हुँ। जो मैं समय की आवश्यकतानुसार कहे जारहा हूँ या मौज आधीन कहे जारहा हूँ। मानवता अपनाने से ही कल्याण हो सकता है।

गुरु पशु नर पशु त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मानष ताही जानिये, जाहि विबेक विचार॥

यह शब्द सत कबीर के हैं और यही अब मेरे है। वेद कहते हैं 'मानष भव' यही सन्तो का मार्ग हैं।

दाता दयाल (महर्षि शिव) भी कह गये : - -

'Be men entire' Who and in everythiog'

(अर्थात्त पूण रुपेण मनुष्य बनो

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कल्याण चाहते हो तो गुरु परायण होना चाहिये। गुरु नाम है ज्ञान का, विवेक का, अनुभव का। जीने का राज सीखो। शरीर को स्वस्थ रक्खो। मन को शुभ संकल्प द्वारा ठीक रक्खो। आत्मा में लय होने का साधन करो।

निर्वति मार्ग सबका नहीं है। उसके पीछे न पडो। उस मार्ग का अधिकार संस्कार बनने दो। जो कुछ मैंने कहा है उस पर चलो। केवल मत्थे टेकने से या मुझे पूजने से कल्याण नही हो सकता।

सबको शान्ति।

Regd. No. L-ALG – 28

पुस्तकें

हमारे यहाँ

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक,
स्त्री उपयोगी,
स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी
पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती'
सिलसिले के उपन्यास तथा
परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज
कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें
मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से
भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव भवन, लेखराजनगर,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं० ——

श्री

अ० स० सम्पादक — महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक

व्यवस्थापक व प्रकाशक—
श्रीमती सुधा मीतल,
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़।